इतिहास के भेद

(19) VI - 9

इतिहास लिखने और रखने का रिवाज कोई नया नहीं है। संसार में सभी जातियां अपना अपना इतिहास सुरक्षित रखती आई हैं। अलबत्ता परिस्थितियों और मनोस्थितियों के अनुसार उसके लिखने की शैली में परिवर्तन होते रहे हैं। यद्यपि ऐसा होना नहीं चाहिये था। क्योंकि 'इति-ह-आस', शब्द इतिहास शब्द के इस अनुक्रम अन्वय का अर्थ ही है- "जैसा हुआ हो।" अर्थात घटना जैसी हुई हो उसके अक्षरशः वैसी ही वर्णन करने या लिखने का नाम इतिहास है।

इतिहास की उपयोगिता के बारे में तो कुछ कहना ही अनावश्यक है। हमारे पूर्वजों ने कठिन परिश्रम और लम्बे अनुभवों द्वारा जो अनेक उपयोगी वनस्पतियों और खनिज पदार्थों के गुण दोषों का पता लगाया, भिन्न २ रोगों पर उनके प्रयोगों का अनुभव किया, पदार्थों के गुण-दोषों को बदलने की प्रक्रियाओं का आविष्कार किया, उसी का फल सर्वमान्य अनिवार्य औषधक साहित्य है। उसकी बदौलत आज हमारा

कितना श्रम, समय और धन बच जाता है? ठीक इसी प्रकार का उपयोग मानव समाज के लिये अपने राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक इतिहास का है। जिस प्रकार शरीर का स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये आयुर्वेद के सारे विज्ञान, अन्वेषण शक्ति, और उसके अनगिनती प्रयोगों की आवश्यकता पड़ी थी, उसी प्रकार मानव समाज रूपी शरीर का स्वास्थ्य ठीक रखने और उसे उन्नत बनाने के लिये समाज के नेताओं को प्रत्येक विभाग के लिये अनेकों नीतिशास्त्रों के आविष्कार कर उनका भिन्न २ प्रकार से प्रयोग करना पड़ा था। यही कारण है कि प्राचीन युग में इतिहास का इतना महत्व था और जहां वह आम तौर पर वेदांगों के समकक्ष माना जाता था, वहां अनेक समूहों में उसका दर्जा वेद के समान ही था। यही कारण है कि इतिहास की पवित्रता का बहुत अधिक ध्यान रक्खा जाता था + और वेद वेदाङ्गों के साथ उसका अध्ययन भी अनिवार्य समझा जाता था।

गुर्जर जाति का इतिहास

नाम

'गुर्जर' नाम के कुछ इतिहासज्ञों और भाषाविदों ने
काफी बहस हो चुकी है। यद्यपि जातियों के नामों
की व्युत्पत्ति का इतिहास में कोई खास महत्व नहीं है। मुख्य
वस्तु जातियों की संस्कृति और उन के आचार का इतिहास
व सामाजिक पद होता है। फिर भी प्राय: नाम की व्युत्पत्ति
का सिलसिला बहुत पुराने समय से चला आता है। इस
ढंग का सिलसिला यहां तक बढ़ा हुआ है कि प्राय: बहुत से
सिलसिले का मूल ... बिना किसी सबूत के भी अपनी वंशावली को, त्रेता,
लोगों ने
द्वापर और सतयुग तक पहुंचाने का हास्यास्पद प्रयत्न किया है।
उदाहरण के लिये सीसोदिया वंश का ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक ठीक
पता गुहिल से आगे कुछ नहीं चलता, फिर भी उन्हों ने अपनी
वंशावली ठेठ रामचन्द्र जी से जा मिलाई है। इसी तरह प्रतिहारों
ने अपना वंश रामचन्द्र जी के छोटे भाई लक्ष्मण जी के साथ
जोड़ दिया है, यद्यपि लक्ष्मण जी के सिर्फ राम का ही
'दरबान' या 'प्रतिहार' का काम करने का
विशेष उल्लेख रामायण में मिलता है और एक बार किसी विशेष
कारण से किसी कुटी के अतिथि विश्वस्त होने के कारण
द्वारपाल का काम करने से उन का वह वंश पद नहीं हो सकता।
परन्तु 'अर्थी दोषं न पश्यति' की कहावत के अनुसार महत्व-
कांक्षी लोगों को इन बातों पर विचार करने की ज़रूरत
ही कैसे महसूस होती? उन का उद्देश्य तो बड़े और प्रसिद्ध
लोगों से अपने वंश की कड़ी मिलाना और इस दौड़ में औरों से
पीछे न रहना था।

इस से यह लिखने का अर्थ या लक्ष्य किसी समूह पर
आक्षेप करना या उस की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचाना नहीं है।

इसका आशय केवल इतना ही है कि वे जिस इतिहास को महत्वपूर्ण बनाने के स्थान पर और हास्यास्पद और अविश्वसनीय बना देते हैं और इस विषय के अनावश्यक ही नहीं लगाया जाता है। इतिहासों और शिलालेखों तथा ऐसे अन्य बहुत से समूहों का इतिहास के क्षेत्र में बैठे हुए इतना अच्छा स्थान है कि इस गुर्जर के पर को न लगाने परन्तु उन के महत्व में कोई अन्तर न आता। और आखिर हुआ भी यही। श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भी अपने 'राजपूताना का इतिहास' में यही बात साफ लिखदी है।

'गुर्जर' नाम के बारे में भी लोगों ने इसी प्रकार अनेक अटकलें लगाई हैं। किसी ने उन का सम्बन्ध राम से जोड़ा है, किसी ने कश्यप से। कोई कहते हैं कि "गउ-चर" शब्द का अपभ्रंश 'गूजर' या गुर्जर शब्द है। कुछ कहते हैं कि "गुर्जरदेशोद्भवा गुर्जरा:।" अर्थात् जो गुर्जर देश में पैदा हुए, वे गुर्जर हैं। "क्षत्रिय वंश प्रदीप" (पृ. ८११) के कर्ता कहते हैं कि—

गा शत्रुकृत ताडन वधोद्यामादिकं वा उज्जातियों देश:
कलिंगाससाहुलिका इति वदे शत्रून् जिते लक्ष्णीतिइयम:

इसी पुस्तक में आगे गुर्जर शब्द की व्युत्पत्ति 'गुरुतर' और 'गुरुजन' शब्दों से बताई है।

किन्तु ये सब बातें इतिहास की दृष्टि से बेकार प्रतीत होती हैं। मौलिक शब्द के विषय में किसी जाति के नाम की व्युत्पत्ति निकालने का कोई मूल्य नहीं हो सकता। रहा देशों और प्रान्तों के नामों का प्रश्न, सो अब तक गुर्जरों के नाम से 'गुजरात, गुजरांद, गूजरानवाला, गुजरात' गुर्जिस्तान आदि कितने देश (काश्मीर), गज़ा (कांगड़ा),

व प्रदेश मिले हैं, उन सब के बारे में यह प्रमाणित हुआ है कि इन देशों और प्रदेशों के ये नाम गुर्जर जाति के शासन के कारण पड़े हैं। गुर्जरों के शासन में आने के पहले इन के ये नाम न थे। अतः नाम के प्रश्न पर प्रारम्भ में विचार में पड़ना इस अनावश्यक समझते हैं और उन का इन ऐतिहासिक घटनाओं पर छोड़ना ही अधिक बुद्धि युक्त ~~समझते हैं~~ प्रतीत होता है।

गुर्जर वंश व उस का अस्तित्व

गुर्जर वंश के बारे में अब प्रायः सब इतिहासज्ञ इस बात पर तो एक मत होगये हैं कि यह वंश भी भारतवर्ष के राज्य वंशों में से एक है। यह ही नहीं तीसरी से छठी शताब्दी के बीच में उनका भारतवर्ष में बहुत बड़ा साम्राज्य रहा है। जिस के फल से बम्बई और सिन्ध से लेकर U.P. तक के भाग का नाम गुजरात या गुजरत्रा पड़ गया। इसी तरह पंजाब और काश्मीर में इस जाति के प्रदेशों को गुजरात का नाम दिया है। परन्तु गुर्जर क्षत्रिय हैं या वैश्य और उनका किन प्रसिद्ध वंशों से सम्बन्ध है, यह बात आज तक इतिहास के विद्वानों में विवाद का विषय बन रही है। उदाहरण के लिये–

वी. ए. स्मिथ अपने इतिहास भा० २ से १० तक के गुर्जरों के संबंध में लिखते हैं कि "पुराने इतिहास सम्बन्धी लेखों में हूणों के साथ प्रायः एक गुर्जर जाति का उल्लेख मिलता है इसका नाम आज कल 'गूजर' के रूप में रह जाता है। यह जाति उत्तर पश्चिमी हिन्दुस्तान में बड़ी संख्या में फैली हुई है। मालूम होता है कि गुर्जर लोग हिन्दुस्तान के बाहर की रहने वाली थी एवं उनका बहुत निकट का नाता नहीं हूणों से रक्त का सम्बन्ध था। उन्होंने राजस्थान में एक बड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया

जिसकी राजधानी आगरा के उत्तर पश्चिम में ५० मील के फासिले पर आबाद थी।

~~गुर्जर शब्द के भिन्न भिन्न देशों में उच्चारण :—~~

~~चीनी~~

7

क्षत्रशूद्रे पुत्रा लोके भार्गवेण प्रदर्शिते

पितृलोके ~~[illegible]~~ इति [illegible] आत्मनो कन्यासोमो सद्य सकश:

ब्राह्मणान् जग्मुः सत्यमेव पुत्रोत्पादन निश्चयात्.

अतो धार्मिकं गर्भं [illegible] विधिवत् [illegible]

पुत्रान् सुषुवे कन्या [illegible] क्षत्र वंशजान्.

बृहत्संहिता (२४.८) में जाटों का मूल स्थान [illegible] पंजाब न.

आन्तेयों [illegible] कौशल, कलिंग, वंग [illegible]

अहिच्छत्री ब्राह्मण, - [illegible] के [illegible] -

[illegible] में [illegible] ।

सादाबाद के [illegible] - [illegible] के [illegible] ।

[illegible] का पद दिया । इनके [illegible] ने [illegible]

[illegible] ने पृथ्वीराज का साथ दिया । [illegible]

में मुसलमान हुए । [illegible] में [illegible]

[illegible] । मूल स्थान [illegible] । [illegible]

[illegible] कहते हैं ।

उग्रसेन [illegible] (भागवत)

[illegible] 2468 B.C. [illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible] के -

दुःख सुख [illegible] कायमात्र नैव पार्थिव:

ते [illegible] आदि पुरुष [illegible]:

[illegible] तेषां प्राप्ता: [illegible] मंडलं।

[illegible] च [illegible]

[illegible] (संस्कृत)

[illegible] के [illegible] किया है। [illegible]

[illegible] (हिन्दुस्तान) के पास [illegible] है।

[illegible] ४१ [illegible] ([illegible])

[illegible] शुभम्।

भारतीय ~~[illegible]~~ राजनीति के तत्व

आज कल स्वराज्य हो जाने पर भी भारतीयों को राजनीति शास्त्र अंग्रेज़ों और योरोप के विद्वानों का ही लिखा हुआ मिलता है। कालिजों में भी वही पढ़ाया जाता है। कुछ भारतीय विद्वानों ने भी 'राजनीति' पर ग्रन्थ लिखे हैं - परन्तु वे भी उन्हीं के अनुवाद या संकलन मात्र हैं। यह स्वाभाविक भी है। आज कल शासन करने वाली जाति को, किसी देश पर अधिकार हो जाने के बाद, सब से पहले आक्रमण पराधीन बनाई हुई जाति की संस्कृति, उस के इतिहास और उस के राजनीति विज्ञान पर होता है। इन का निर्माण, इन की शिक्षा और इन की व्यवस्था वह अपने हाथों में ले लेती है। परिणाम यह होता है कि पराधीन होने वाली जातियों का मस्तिष्क और जीवन कुछ काल में उसी रंग में रंग जाता है। उदाहरण के लिये आज योरोप के अनेक देश, जो किसी समय एशियाई सभ्यता के प्रतिनिधि थे, इतने बदल गए हैं कि उन्हें पहचाना भी नहीं जा सकता। जर्मनों को ही लीजिये। उन के प्रारम्भिक इतिहास से पता लगता है कि जब वे जर्मनी में जा के आबाद हुए, तब भारतीय ढंग के ढीले और सात्विक कपड़े पहना करते थे। धोती बांधते थे। वहां बर्फीला देश था, तब भी वे प्रातः 4 बजे उठ कर ठंडे पानी से स्नान किया करते थे। शिव आदि देवताओं को पूजते थे। इसी प्रकार बाल्कन देशों के लोग कुछ शताब्दियों पूर्व तक वैदिक देवताओं को पूजते थे। चोटी रखते थे। भारतीय शैली की पोशाक पहनते थे। ग्रीक सभ्यता तो भारतीय सभ्यता की सगी बहन के ही सदृश थी। आज भी भारतीयों में करोड़ों यवन (ग्रीक), शक आदि भारतीय जातियों के रूप में विद्यमान हैं।

इस में सन्देह नहीं कि संस्कृति और सभ्यता में परिवर्तन पहले भी होते थे, परन्तु उन परिवर्तनों और इन दिनों के परिवर्तनों में बड़ा अन्तर है। पहले के परिवर्तन साधारणत: स्वेच्छा से होते थे। लोग किसी बात को अच्छी समझते और उसे ग्रहण कर लेते थे, कोई उन्हें जान बूझ कर या बलपूर्वक उन के साहित्य और संस्कृति को नष्ट न करता था अपने रंग में रंगने की कोशिश नहीं करता था। यदि कुछ असभ्य समूह कभी ऐसा करते भी थे, तो जंगली पन से। परिणाम यह होता था कि कुछ समय के लिये विवश हो कर प्राचीन सभ्यता दब जाती थी, किन्तु भीतरी विरोध उसे लोगों के दिलों में ज़िन्दा बनाए रखता था और अवसर पाते ही वह फिर अपने असली रूप में आ जाती थी। आज जो संसार में प्रत्येक देश में अनेक जातियां और उन की संस्कृतियों का इतिहास विद्यमान है, वह स्वत: इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन संसार में बल पूर्वक किसी की संस्कृति नष्ट नहीं की जाती थी। यह स्थिति पिछले युग में ही पैदा हुई और अधिक विनाशक रूप में पैदा हुई। कारण, पीछे ऐसा प्रयत्न करने वाली सत्ताएं अधिक चालाक और मंजी हुई थीं। पहले की जंगली जातियां पशुबल से प्राचीनों को अपने अनुकूल बनाती थीं। इन्हों ने अप्रत्यक्ष मार्ग अपनाया और शरीर के स्थान पर लोगों के मस्तिष्क पर आक्रमण करने का मार्ग निकाला। नतीजा यह है कि आज यह 'सभ्यता महारोग' भी सम्प्रदायवाद का ही दूसरा संस्करण बन गया है और दो देश के देश उस के शिकार हो रहे हैं। भारत यद्यपि अनेक कारणों से उस दर्जे तक तो इस आक्रमण का शिकार नहीं हुआ, फिर भी उस पर इतना प्रभाव तो हो ही गया है कि उस की अपनी सभ्यता मृतप्राय हो गई है। कारण, उस के विद्वानों या मस्तिष्कों से अपनी चीज़ प्राय: गायब हो चुकी है। केवल अभिमान बाकी रह गया है। वह अभिमान भारतीय होने का भी है।

परन्तु सम्मत और आचरण पर पाश्चात्य रीति नीति का ही छाते हैं। और वे कहीं भी बचाकर अपने साहित्य को ले तो उन्हें बहुत पहले से अवहेलित और अविश्वसनीय करार दिया जाता था और जो कुछ उन्हों ने पढ़ा-देखा है वह पाश्चात्य ही पाश्चात्य है, ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही है कि वे भारतीय शासक और शक्ति में पाश्चात्य राजनीति के पुतले पर कठपुतलियां मात्र रह गए हैं।

पाश्चात्य राजनीति ऋणी

और पाश्चात्य राजनीति तो स्वयं ऋणी है, वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे सभ्य बने उस से पूर्व उन के यहां कोई राजनीति शास्त्र नहीं था। 'पोलिटिक्स' शब्द ही उन्हों ने यूनानियों से लिया और उन्हीं की 'राजनीति' से उन की आधुनिक राजनीति का विकास हुआ है। भारतीय पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि यूनानी सभ्यता के अन्तिम उत्थान - जिस का इतिहास मिलता है - के बहुत पहले भारत में पौर-जनपद स्थापित हो चुके थे। इन की शासन नीति "पौरनीति" कहलाती थी और इन की पौर समितियों के नागरिक प्रहरी-पौरिक कहलाते थे। इसी का अपभ्रंश यूनानियों ने 'पोलिटिया' और 'पोलिस' किया। पीछे हिरोडोटस ने इस शब्द का संस्कार - 'पोलिटिक्स' किया, वहीं से यह राजनीति का बोधक शब्द बना।

कहना व्यर्थ है कि पौर-जनपदों का विकास भारतीय गणों या जनतंत्रों के पतन काल में शुरू हुआ था। देश ही नहीं, एशिया के विस्तृत क्षेत्रों में गण उस समय भी फैले हुए थे, जिन में समानता की भावना इतनी प्रधान थी कि वहां विशेष हित वालों की दाल न गलती थी। तब ये पौर-जनपद ही विशेषहित वाले दलों और Oligarchies सामन्तवादियों के अड्डे थे। यूनानियों के नगर राज्य भी इन्हीं पौर जनपदों की नकल थे। उन में केवल नगर निवासियों को ही जनतंत्र के नागरिक के अधिकार होते थे, नगर के बाहर के लोगों को न कोई अधिकार होता था न प्रतिनिधित्व।

Job P. Press, Ajmer.—2,570 Bks.—9-7-37.

77

T. 32 B.
R. I.-July 1937.

B. B. & C. I. Railway Company.

(Incorporated in England by Special Act of Parliament.)

(Including the Holkar State and the Scindia-Neemuch State Railways.)

Summary of Silver, Packages and Covers etc. for..................Station transferred from Guard.........................to Guard.........................at...........Station on.........................

Stations to or Section.	Number of packages.	Number of Silvers.	Number of base coins sealed covers.	Number of booked covers.	Empty Canvas bags.	Guidances.			Misc.
						P.	C.	V.	
									A. Boxes......................... E. T. Boxes..................... F. Extinguishers .... Tail Lamp.........................
									D. Lists for: Covers. / Circulars. / E. L. C. Bags / Others.
Total ...									

To be prepared by each guard during his run in triplicate.

(1) for record, (2) for submission to D. T. S. (concerned) with guard's report and (3) for guard taking over.

....
Guard making over.

....
Guard taking over.

For Distt. Traffic Supdt.

उन से प्राय: इन का संघर्ष रहता था, यहां तक कि जिस प्रकार भारतीय आर्यों ने शूद्र वर्ण की सृष्टि की, उसी प्रकार यूनान के 'प्लेटो' ने 'गुलामवर्ग' का अस्तित्व समाज के लिये आवश्यक बताया, अर्थात ये जनतंत्र ऐसे न थे जिन में केवल मानवता के आधार पर प्रत्येक मनुष्य के समान अधिकार माने जाते हों, यही नहीं; वे उन तत्वों से बने हुए जनतंत्र थे जिन में नागरिक, गुलाम और जनतंत्र के बाहर के लोगों को कुचलना आवश्यक माना जाता था। भारत में उन ही के नीतिशास्त्र का नमूना "कौटल्य का अर्थशास्त्र" है। उधर योरोपीय सभ्यता का विकास भी प्राय: उसी प्रकार की रोमन-यौ-सभ्यता में से हुआ था, ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि उन्हें 'ग्रीक पौरनीति' एक आदर्श वस्तु जान पड़ी। और जिस वस्तु का बीज ही दूषित हो, उस के फल तो अच्छे हो ही कहां से सकते हैं? एक बात और। ग्रीक लोग 'पोलिटिक्स' शब्द से हमेशा 'नगर राज्य की राजनीति' ही अर्थ लेते हैं। उस क्षेत्र से बाहर के लिये उन्हों ने इस का प्रयोग क्वचित ही किया है।

नाम का प्रश्न

यद्यपि पाठकों की समझ में आने की दृष्टि से हम ने 'राजनीति' शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु ग्रन्थ के नाम में से राज शब्द निकाल दिया है। योरोपीय विद्वानों के सामने भी इस के नाम करण की समस्या रही है। जैलिनेक (Jellinek ~~हॉलजनडॉर्फ~~ Holtzendorff) हॉलजैनडॉर्फ और सिजविक आदि ने इस का नाम Political Science "राजनैतिक-विज्ञान" रक्खा है। श्री. अर्नेस्ट नाथम ने इसे Political Theory "राजनैतिक सिद्धान्त" संज्ञा दी है, ~~श्री. भार्गव ने~~

किन्तु इन नामों को स्वीकार करने में कई कठिनाइयां हैं। प्रथम तो, जैसा कि हम बता चुके हैं Political शब्द ही पौरनीति का वाचक है, राज-नीति का नहीं। यदि यह कहा जाय

कि आज कल तो उस का अर्थ व्यापक हो गया है, तो भी वह केवल 'राज' तक ही सीमित रहता है। तब प्रश्न होता है कि समाज रचना में 'राज' का कोई स्वतंत्र और अनादि या अनिवार्य अस्तित्व है क्या? इस प्रश्न के उत्तर में 'हां' कहना कठिन है। न तो इतिहास ही इस का समर्थन करता है न वर्तमान संसार ही। इतिहास में सदा अनेक अराजक समूहों का अस्तित्व पाया जाता है और आज भी है। पशु पक्षियों में तो किसी भी समय नहीं था। इस से स्पष्ट है कि राज्य या राज कभी भी मानव समाज का या सर्व संसार का अनिवार्य अंग नहीं रहा।

फिर विज्ञान और सिद्धान्त जैसे शब्द ऐसी ही चीजों के लिये प्रयुक्त किये जा सकते हैं, जिन का आधार प्राकृतिक एवं स्थायी पदार्थ या तथ्य हों। 'राज्य' तो ऐसी चीज नहीं। वे प्रायः बदलते रहते हैं। उनके रूप भी बदलते रहते हैं। इतना ही नहीं, वे नष्ट भी होते रहते हैं। प्रायः उन की पारस्परिक नीतियों में भी साम्य नहीं रहता। सिद्धान्त-न बदलने वाली या वैज्ञानिक क्रम से बदलने वाली बातों के लिये प्रयुक्त होने वाला शब्द है। किन्तु राजनीति तो 'वेश्या' कही जाती है- और आज कल तो वास्तव में है। राज्यों के बदलने और नष्ट होने का भी कोई वैज्ञानिक क्रम नहीं होता। ऐसी स्थिति में इन के लिये विज्ञान और सिद्धान्त जैसे शब्दों का प्रयोग सर्वथा अनुचित है।

पाश्चात्यों की राज्य कल्पना

किन्तु पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि 'राज्य' मानव समाज की एक अनिवार्य और स्थायी आवश्यकता है और इस लिये उस को सिद्धान्त कहना ठीक है। उन की लेखन शैली का भी पाठक पर यही प्रभाव पड़ता है, वैसा ही उन का वर्णन क्रम है। उदाहरण के लिये पाश्चात्य विद्वानों में तीन प्रकार के व्याख्याकार हैं:-

1. पहले वे आधुनिक लेखक हैं, जो सब से संकुचित मनोवृत्ति के हैं। उन के अनुसार राजनीति के दो ध्येय हैं:-
(1) अपने दल का चुनावों में नियन्त्रण
(2) सरकार पर कब्जा कर उसे अपने दृष्टि कोण से चलाना।

२ दूसरी श्रेणी की विचारधारा को फ्रेंच लेखक पाउल जेनेट (Paul Janet) प्रगट करता है। वह राजनीति के दो भाग करता है:-

(१) समाज-विज्ञान का वह भाग जो राज्य के उद्गम या बुनियादी उद्देश्यों को बताता है।

(२) शासन के सिद्धान्त।

कुछ लेखकों ने इस के पहले भाग को 'राजनीति विज्ञान' नाम दिया है, परन्तु आधुनिक लेखक 'राजनीति' का दर्शन से सम्बन्ध जोड़ना बेहूदा बताते हैं। उन का कहना है कि दर्शन का सम्बन्ध विश्व और समाज के उद्गम से है। राजनीति से इस का कोई सम्बन्ध नहीं। वे कहते हैं कि आज ही की समस्याऐं राजनीति के लिये बहुत ज्यादा हैं, फिर दर्शन को उस में ठूंसने से तो आफ़त ही हो जायगी।

प्रश्न यह है कि फिर राजनीति का ध्येय क्या हो और उस पर नियन्त्रण क्या? साधारण पशु-घोड़े पर भी सवारी करने के लिये लगाम, हंटर आदि की ज़रूरत होती है, तब राज्य और राजनीति जैसी चीजों को बेलगाम छोड़ना कितनी विनाशक बात है? उस का परिणाम भी आज हम विश्वव्यापी युद्ध और राष्ट्रों के राग द्वेष में देख रहे हैं।

3. इस से कुछ अधिक उदार व्याख्या 'मि. सीली' (Seeley) की है। उन का कहना है कि:—

History without political science has no fruit.

Political science without history has no root.

और भी—

Politics are vulgar when not liberalised by history & history fades into mere literature when it looses sight of its relation to politics.

"राजनीति विज्ञान के बिना ~~कोई फल नहीं लाती~~ इतिहास से कोई लाभ नहीं और इतिहास रहित राजनीति का कोई आधार नहीं।" "यदि राजनीति ~~के~~ इतिहास के द्वारा उदार न बनाई जाय तो वह लफंगापन हो जाती है और यदि इतिहास में राजनीति विज्ञान की उपेक्षा की जाय तो वह केवल कहानी हो जाती है।"

लेखक का अभिप्राय तो स्पष्टतः यह था कि इतिहास वास्तव में वही है जिस में समाज और शासन के भिन्न २ स्थितियों में किये गए वैज्ञानिक राजनैतिक प्रयोगों का वर्णन हो और राजनीति के नियमों का निर्धारण ऐसे इतिहास के आधार पर किया जाय। अर्थात जिस प्रकार प्राचीन लोगों की वैज्ञानिक और वैद्यक आदि शोधों से आगे के शोधकों का मार्ग सरल हो जाता है और दोनों के लिये एक दूसरे का आश्रय जरूरी हो जाता है, उसी प्रकार इतिहास और राजनीति विज्ञान ~~के~~ का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है और ऐसे माना जाना चाहिये। इस से यह कि राजनैतिक नियम और विचार प्रत्येक मानव समुदाय के लिये उस के इतिहास के आधार पर ही बनने चाहियें। इस में सन्देह नहीं कि इस सिद्धान्त को आधुनिक योरोपीय नीतिज्ञों ने किसी हद तक माना। किन्तु माना उलटे तरीके से और उस का दुरुपयोग करने के लिये। उन्हों ने इतिहास के आधार पर अपनी राजनीति को उदार बनाने के बजाय, इतिहास को अपनी राजनीति लोगों के मस्तिष्क में भरने का अस्त्र बना डाला और इस के लिये जहां आवश्यकता हुई दूसरे देशों के इतिहास को भी कहीं नष्ट और कहीं भ्रष्ट कर डाला।

— अधिक उदार व्याख्याता

यह बात नहीं है कि पाश्चात्य देशों में अधिक उदार व्याख्याता नहीं हुए हैं। बहुत हुए हैं। परन्तु वे व्यावहारिक राजनीति पर कोई प्रभाव नहीं डाल सके। उदाहरण के लिये Roy 'फ़ॉक्स' ने कहा है:—

If a thing is morally wrong it can never be

politically right.

एक और विद्वान ने कहा है कि —

Politics divorced from ethics rests on a foundation of shifting sand. Ethics from divorced from politics is narrow & abstract.

अर्थात् — "यदि एक बात नैतिक दृष्टि से गलत या बुरी है, तो वह राजनैतिक दृष्टि से सही या अच्छी नहीं हो सकती।"

और यह कि

"नैतिक नियमों के विरुद्ध राजनीति बिलकुल रेत पर बने महल के सदृश होती है और नैतिक नियम राजनीति से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने पर संकीर्ण और काल्पनिक मात्र रह जाते हैं।"

आइवर ब्राउन (Iver Brown) ने भी कहा है कि —

Politics is but ethics writ large. अर्थात् राजनीति नैतिक नियमों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। किन्तु पाश्चात्य नीतिज्ञ इतिहास की तरह 'नैतिकता' को भी केवल ऊपर से मान देते हैं और वास्तव में 'मैकियावेली' (Machiavelli) के इस कथन के अनुसार विश्वास और आचरण करते हैं कि Religion & morality are not masters of the State, not even safe guides, but useful servants. अर्थात् "धर्म और नैतिकता राज्य के स्वामी नहीं है, यही नहीं, वे विश्वसनीय पथ प्रदर्शक भी नहीं हैं। हां, वे उपयोगी दास हैं।"

यही व्यवहार में पाश्चात्य राजनीति करती है। वह धर्म और नैतिकता की दुहाई सिर्फ दुनिया को बेवकूफ बनाने और अपना काम निकालने के लिये देती है, किन्तु करती वही है, जिस में दल विशेष का स्वार्थ सिद्ध होता हो। यह इस से भी स्पष्ट है कि

उन्हों ने इस मामले में अपने ग्रीक गुरुओं की भी उपेक्षा की है। उदाहरण के लिये 'प्लैटो' ने स्वयं कहा है कि—

Politics is a sub division of ethics. अर्थात् राजनीति—नैतिक नियमों की एक उपशाखा है।

अरस्तू (Aristotle) ने भी कहा है कि—

The end of the state is good life or community of well being. अर्थात राज्य (या राजनीति) का उद्देश्य सात्त्विक और सुखमय जीवन या स्वस्थ वा सुखी समाज है।

सर फ्रैड्रिक पोलक (Sir Fredrik Polak) ने राजनीति का उद्देश्य कुछ और विस्तार से बताया है। उन्हों ने उस के 3 विभाग किये हैं— सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, राज्य व्यक्ति रूप में।

(1) सैद्धान्तिक में वह— राज्य, शासन, और विधान निर्माण को स्थान देते हैं,

(2) व्यावहारिक में— राज्य के रूप या संगठन का निरूपण और विधान को व्यावहारिक रूप देने की व्यवस्थाएं तथा उपनियम आदि को,

(3) इन सब अधिकारों का व्यक्ति की तरह काम में लाने वाला 'राज्य' रूप व्यक्ति है, जिसे कूटनीति, शान्ति, विग्रह और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के पूर्ण अधि—का प्राप्त होते हैं।

किन्तु मूल प्रश्न को यह व्याख्या भी हल नहीं करती। कारण स्पष्ट है। वह 'राजनीति' को एक सिद्धान्त मान कर की गई है। किन्तु जिसे स्वयं 'प्लैटो' ही नैतिक सिद्धान्तों की शाखा भी नहीं, उपशाखा मात्र मानता है, वह सिद्धान्त का स्थान कैसे ले सकती है!

सार यह कि न तो वास्तव में राजनीति कोई स्वतंत्र विज्ञान है न उस के कोई स्वतंत्र सिद्धान्त हैं। समाज शास्त्र या समाज विज्ञान की वह एक उपशाखा मात्र है और अपने उस मूल एवं उस के सिद्धान्तों को छोड़ कर यानि स्वतंत्र बन जाने के कारण ही आज वह पथ भ्रष्ट हो, को भटक रही है।

20

कुछ नए प्रश्न

हम बता चुके हैं कि संसार के पुराने नीतिकारों की तरह पाश्चात्य देशों में भी सत्य शोधक लेखक हुए हैं और हैं। यद्यपि उन की कोई तुलना नहीं। ऐसे लेखकों के इतिहास और नैतिक नियमों सम्बन्धी उदाहरण हम दे चुके हैं। यहां कुछ और प्रश्नों का दिग्दर्शन संक्षेप में कराया जाता है।

अर्थ नीति

पहला नया प्रश्न कुछ नीतिज्ञों ने यह उठाया कि चूंकि अर्थ ही सारी सांसारिक व्यवस्था और उन्नति, अवनति का मूल है अतः राजनीति की पथ प्रदर्शिका 'अर्थ नीति' होनी चाहिये। यहां तक कि जर्मन लेखक ओपैनहाइमर (Oppenheimer) ने तो मालदार वर्ग को ही शासक बनाने की सिफ़ारिश की है। 'राज्य' की व्याख्या करते हुए वह कहता है कि The state is the formal staff of the class, which owns economic power. अर्थात "राज्य आर्थिक शक्ति पर ~~कब्जा~~ अधिकृत वर्ग के बाकायदा (बने हुए) कर्मचारी वर्ग का ही नाम है।"

इस का उत्तर देते हुए मि. आइवर ब्राउन कहते हैं कि — Economics is concerned with things, while political science is concerned with people. अर्थात "अर्थनीति का सम्बन्ध जड़ वस्तुओं से है, जब कि राजनीति का सम्बन्ध जनता से है।" सार यह कि ऐसा करना चेतन प्राणियों पर जड़ का शासन स्थापित करना होगा अथवा यों कहें कि भोग्य वस्तु को भोग करने वालों का मालिक बनाना होगा।

एक और विद्वान ने इस की दुखती रग पर प्रकाश डाला है। उन का कहना है कि An economist is one, who knows the price of every thing but the value of nothing.

यह जानते हुए भी कि विज्ञान का 'न नाशक' कार्यों में प्रयोग करना अमानुषिक करता है, वे अपना काम और मजदूरों जैसों का [illegible] करते हैं और उन्हें लाभ [illegible] चलाते हैं ; अपने [illegible] शक्ति के बल पर [illegible] लोगों को लड़ाते हैं / और [illegible] अपने [illegible] मानव [illegible]

[illegible] अधिकार और [illegible] प्रति अपना [illegible] नहीं, [illegible] और शोषित [illegible]

५. राजकुमार 'क्रोपाटकिन' ने तो अपनी
Conquest of Bread (रोटी का सवाल)
नामक पुस्तक में इसका खूब मुंहतोड़ उत्तर
दिया है। उन्होंने बताया है कि मकान, दुकान, जमींदारियां
और व्यापार, सब का मूल्य [illegible] जनता की आबादी
जनता के सहयोग और जनता की शक्ति
की बदौलत हुआ है। यदि आम जनता
हट जाय, जमींदारियों में काम
व्यापारियों का बहिष्कार करे
इन सब का मूल्य खो जायेगा।
अतः जब अर्थ नीति का आधार [illegible] है तब आर्थिक हित किसी व्यक्ति
का हो ही कैसे सकता है और [illegible]
जनता को [illegible] जनता की [illegible]
अधिकार ही क्या है?

Job P. Press, Ajmer.—2,570 Bks.—9-7-37.

T. 32 B.
R. I.-July 1937.

B. B. & C. I. Railway Company.

(Incorporated in England by Special Act of Parliament.)

(Including the Holkar State and the Scindia-Neemuch State Railways.)

Summary of Silver, Packages and Covers etc. for............Station transferred from Guard.........

Guard...........at.............Station on..............

Stations to or Section.	Number of packages.	Number of Silvers.	Number of base coins sealed covers.	Number of booked covers.	Empty Canvas bags.	Guidances P.	Guidances C.	Guidances V.	Misc.	A. Boxes	E. T. Boxes	F. Extinguishers	Tail Lamp	D. Lists for	Covers.	Circulars.	E. L. C. Bags	Others.
Total ...																		

To be prepared by each guard during this run in triplicate (1) for record, (2) for submission to D. T. S. (concerned) with guard's report and (3) for guard taking over.

.... Guard making over. .... Guard taking over.

For Record.

74

21

अर्थात् "अर्थशास्त्री वह है, जो हर चीज के भौतिक मूल्य को तो जानता है किन्तु नैतिक मूल्य किसी चीज का नहीं जानता।" कहना है कि आज पूंजीपति शासन वाले अमेरिका जैसे देश, दूसरे देशों में अकाल होते हुए और लाखों व्यक्तियों को भूख से प्राण त्यागते हुए देख कर भी अपनी फसलों को इसलिये जला कर नष्ट कर देते हैं कि अनाज सस्ता न करना पड़े! अनेक गौ जैसे पशुओं की नस्लों को निर्वंश होने की नौबत ला देते हैं भले ही उसके परिणाम से करोड़ों मनुष्यों के स्वास्थ्य और जीवन नष्ट हो जाय। यह जानते हुए भी कि अफीम जैसे नशीले पदार्थ मानव जीवन के लिये हानिकारक हैं, उनके प्रचार के लिये आक्रमण-पातालन तक कर डालते हैं। कहां तक गिनाया जाय पूंजीवादी शासनों का ढांचा इसी प्रकार ऊपर से नीचे तक अनैतिक बातों से ओत प्रोत है। ऐसी अन्धी और स्वार्थ पूर्ण शक्ति के हाथ में राजनीति देना अन्धों और पागलों के हाथ में तलवार देना नहीं तो क्या है?

※

जनता की मनोवृत्ति

इसी प्रकार मि. ले-बॉन ने राजनीति का ध्येय पाने के लिये लोगों की मनोवृत्ति का अध्ययन आवश्यक बताया है। उन का कहना था कि योरोप में जो राजनैतिक अस्थिरता बढ़ रही है, उस का कारण समझ कर उस का हल ढूंढने में राजनीति को जनता की मनोवृत्ति - शासक जातियों के जातीय स्वाभिमान और पीड़ितों की भावनाओं के अध्ययन से मदद मिल सकती है।" दूसरे शब्दों में उनका कहना है कि हरएक समूह की जैसी मनोवृत्ति हो उसी दृष्टि से उनके साथ व्यवहार करने का मार्ग निकाला जाय। यानी भेड़िया और बकरा दोनों को ही संतुष्ट करने की चेष्टा की जाय।

इसका उत्तर मि. ई. बारकर ने दिया है। उनका कहना है

कि The Psychologist does not and cannot deal in terms of value. Values belong to the moralist's. Therefore Political theory should look to the ethics rather than to Psychology for constructive help. अर्थात् मानसशास्त्री न तो नैतिक मूल्य का व्यौहार करता है न जानता है। नैतिक मूल्य नैतिक सिद्धांतों के आधार पर ही स्थिर रह सकते हैं और इसलिये राजनीति को इस मामले में रचनात्मक सहायता के लिये मनोविज्ञान की अपेक्षा नैतिकता का ही सहारा लेना चाहिये। बात है भी ठीक जब विभिन्न कारणों से एक मानव समाज में ही भक्ष्य और भक्षक पैदा हो गये हैं तब दोनों तरह की मनोवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिये कोई स्थायी हल नहीं निकल सकता, केवल नैतिकता के आधार पर ही भक्षक को रक्षक बनाया जा सकता है और भक्ष्य को उसका उचित स्थान दिलाया जा सकता है, केवल मनोवृत्ति को संतुष्ट करने की (बदलने की नहीं) नीति से 'पंचतंत्र' की कहानी के अनुसार इतना ही हो सकता है कि शेर को शिकार (बातें से रोके) के लिये दूसरे प्राणियों से स्वतः क्रमशः बारी-बारी दान भेजने की व्यवस्था की जाय और शेर को हर किसी प्राणी पर आक्रमण न करने के लिये मनाया जाय। इससे बुराई और कमजोरी दोनों में से किसी की नहीं मिटती।

भौगोलिक प्रभाव

एक और नया प्रश्न जिसको राजनैतिक सिद्धांतों या नियमों को स्थिर करने में बहुत जरूरी समझा जाता है वह लोगों और राजनीति पर भौगोलिक स्थिति के प्रभाव का है.

इस बारे में ग्रीक विद्वान अरस्तु का कहना था कि पहाड़ी भागों में रहने वाले लोग आम तौर पर परिश्रमी और लड़ाके होते हैं और उनमें एक सरदार या मुखिया के अनुशासन में रहने की मनोवृत्ति होती है, इसके विपरीत मैदानों और कृषि की सुविधा वाले प्रदेशों में रहने वाले प्राय: लालची और अनुशासन हीन होते हैं. इन दृष्टियों से प्रत्येक की शासन नीति और राजनीति में अंतर किया जाना चाहिये.

अरस्तु के उपरोक्त कथन का मतलब साफ है. पहाड़ी इलाकों में - जैसे सीमाप्रांत या हमारे देश में भील आदि के देश" - मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति के साधन नहीं होते, इसलिये प्राय: ऐसे लोग लूटमार करने लग जाते हैं और ऐसे कामों के लिये सैनिक अनुशासन वाले दल बनाना आवश्यक हो जाता है. ऐसे समूहों में आमतौर पर अधिक चालाक और बलवान व्यक्ति सरदार बन जाते हैं, क्योंकि इन कामों में उन्हीं गुणों की विशेष जरूरत भी होती है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि उनमें मनुष्यता होती ही नहीं या उनमें मनुष्यता

विकसित ही नहीं की जासकती, खुद ग्रीस के इतिहास ने ही इस बात को ग़लत साबित कर दिया है. ग्रीस एक पहाड़ी देश है वहां जीवन की आवश्यकताएं पूरी करने के साधनों की कमी थी अर्थात खेती के लिये मैदान न थे, किंतु उन लोगों ने प्राकृतिक आधारों पर निर्भर न रहकर बुद्धिकौशल से काम लिया. जंगल और पहाड़ों की वनस्पति और खनिज चीजों से उन्होंने उद्योगों और व्यापार का विकास किया और धीरे २ उन्होंने कम से कम अपने नगरों को आदर्श प्रजातंत्र बना दिया.

लेकिन पाश्चात्य विचारक बोदिन और रूसो-आदि ने अरस्तू के असली आशय की तो उपेक्षा करदी और इस भौगोलिक प्रभाव को देशों और उनकी जनता का-एक प्राकृतिक लक्षण ही बनादिया. उन्होंने तीन विचित्र सिद्धांत स्थापित कर दिये:-

(१) गरम देशों में स्वेच्छाचारी शासन होता है।

(२) ठंडे देशों के लोग जंगली होते हैं

(३) मध्यम जलवायु में अच्छा और प्रजातंत्री शासन होता है!

पाठक देखेंगे कि खुद आज की स्थिति भी इन तीनों बातों को गलत साबित कर रही है। इंग्लैंड एक ठंडा देश है। उपरोक्त सिद्धांत के अनुसार वहां के लोग जंगली होने चाहियें, किन्तु वे सभ्य हैं और दूसरों को सभ्यता सिखाने का दावा करते हैं!

इसी तरह रूस के ठंडे भागों का उदाहरण दिया जा सकता है गरम देशों में अफ्रिका, भारत आदि का पुराना इतिहास यही बतलाता है कि वहां स्वेच्छाचारी शासन का नाम भी न था। इसके प्रमाण चूंकि इस पुस्तक में आगे दिये जायगें इसलिये यहां नहीं दे रहे हैं। मध्यम जलवायु वाले अनेक प्रदेशों और देशों में आज भी स्वेच्छाचारी शासन का बोलबाला है किंतु फिर भी पाश्चात्य लेखक उन्हीं गलत सिद्धान्तों का आश्रय लेकर हमें रात दिन यह पढ़ाते रहते हैं कि "एशियाई देश, और मतों द्वारा जनतंत्र के लिये अनुकूल नहीं हैं।"

राज्य का उद्भव और रूप

आज 'राज्य' के उद्भव और उसके रूप रेखा पर पाश्चात्य विद्वानों के विचारों की परीक्षा कीजाय। 'अरस्तू' ने कहा है कि प्रारंभ में मानव समाज में कुटुम्बों से गांव और गांवों से पंचायती राज्य का उद्भव हुआ। राज्य व्यवस्था की उत्पत्ति के बारे में भी उनका कहना है कि The state comes into existance originating in the bare needs of life and continues for the sake of good life अर्थात् मनुष्यों की जीवन की मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये राज्य व्यवस्था अस्तित्व में आती है और उनके जीवन को अच्छा और उन्नत बनाने के लिये वह आगे चलता रहता है। सार यह है कि शुरू शुरू में छोटे मोटे झगड़ों को निपटाने और जीवन की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये मिलकर प्रयत्न करने को लोगों ने आपसी समझौते से कुछ नियम बनाये और उन नियमों पर लोगों से अमल कराने के लिये कुछ अपने पंच नियुक्त कर दिये। प्रारंभ में यही राज्य का रूप था। पीछे चूंकि इस व्यवस्था से लोगों को लाभ मालूम हुआ तो उन्होंने इसे स्थायी बना दिया और उसका ध्येय सब लोगों की भलाई और उन्नति रही।

किंतु जैसा कि हमने ऊपर के अध्याय में देखा है

28

पाश्चात्य सत्ताऐं ग्रीन को अपना गुरु मानते हुए भी उनकी बातों को वहीं तक मानती हैं, जहां तक वे उनके स्वार्थ ~~के~~ विपरीत न जाती हों। उदाहरण के लिये राज्य के उद्गम ~~के~~ और रूप के बारे में कुछ विद्वानों के विचार सुनिये:—

मि. जेंक्स (Jenks) ने अपने History of politics में कहा है कि All political Communities of the modern type own their existance to successful warfare. अर्थात् "आधुनिक ढंग की सभी राजनैतिक जातियों का अस्तित्व सफलता पूर्वक युद्ध करने की कला के बल पर है।" उसी तरह 'वौलटेअर' का (Voltair) कहना है कि The first King was a fortunate warrior. अर्थात् "सबसे पहिला राजा कोई भाग्यशाली योद्धा था।" इसी तरह टी.एन.कारवर (T. N. Carver) कहता है कि The state is force and nothing but force. अर्थात् "राज्य शक्ति है और शक्ति के सिवाय और कुछ नहीं है।"

सार यह है कि लोगों की दृष्टि में राज्य का उद्गम ~~अस्तित्व~~ ही ~~राज्य का उद्~~ पशुबल से हुआ है और पशुबल से ही उसे कायम रखा जा सकता है। यह बात नहीं है कि इन धारणाओं के विपरीत विचार रखने वाले राजनीतिज्ञों की पाश्चात्य देशों में

पाश्चात्य सत्ताएं ग्रीस को अपना गुरु मानते हुए भी उनकी बातों को वहीं तक मानती हैं, जहां तक वे उनके स्वार्थ के विपरीत न जाती हों। उदाहरण के लिये राज्य के उद्गम ~~के~~ और रूप के बारे में कुछ विद्वानों के विचार सुनिये:—

मि. जेंक्स (Jenks) ने अपने History of politics में कहा है कि All political Communities of the modern type own their existance to successful warfare. अर्थात् "आधुनिक ढंग की सभी राजनैतिक जातियों का अस्तित्व सफलता पूर्वक युद्ध करने की कला के बल पर है।" इसी तरह 'वॉलटेअर' का (Voltair) कहना है कि The first king was a fortunate warrior. अर्थात् "सबसे पहिला राजा कोई भाग्यशाली योद्धा था।" इसी तरह टी.एन. कारवर (T.N. Carver) कहता है कि The state is force and nothing but force. अर्थात् "राज्य शक्ति है और शक्ति के सिवाय और कुछ नहीं है।"

सार यह है कि लोगों की दृष्टि में राज्य का उद्गम ~~अस्तित्व~~ ही ~~राज्य का उद्~~ पशुबल से हुआ है और पशुबल से ही उसे कायम रखा जा सकता है। यह बात नहीं है कि इन धारणाओं के विपरीत विचार रखने वाले राजनीतिज्ञों की पाश्चात्य देशों में

कही है। उन्होंने इन बातों का खण्डन भी किया है। नीचे कुछ ऐसे विद्वानों के भी उद्धरण दिये जाते हैं.

T. H. Green – 'Will, not force is the base of the State. अर्थात् जनता की इच्छाशक्ति राज्य का आधार है न कि पशुबल. (टी. एच्. ग्रीन)

Herbert Spencer – 'State is a joint stock production company for mutual assurance अर्थात् राज्य पारस्परिक विश्वास के लिये एक रक्षा करने वाली जनता की समिति है। (हर्बर्ट स्पेंसर)

Garner – The State is charged with general rather than the particular interests अर्थात् राज्य की जिम्मेदारी सर्व साधारण के हित की रक्षा करना है न कि खास हितों की। (गार्नर)

स्पष्टतः ये प्रायः सब विचारक राज्य को जनता द्वारा, जनता के हित के लिये बनाया हुआ मानते हैं और जनतंत्र का अपने २ दृष्टि कोण से समर्थन करने वाले हैं। किंतु चूंकि राजनैतिक सभाओं को इन के विचार पसन्द नहीं हैं अतः उन के उद्धरण भी इतने अस्पष्ट दिये जाते हैं और उन पर टिप्पणियां इस ढंग से की जाती हैं कि पाठक के मन पर उन का वाञ्छित प्रभाव भी नहीं पड़ पाता।

Job P. Press, Ajmer.—2,570 Bks.—9-7-37.

72

T. 32 B.
R. I.-July 1937.

B. B. & C. I. Railway Company.

(Incorporated in England by Special Act of Parliament.)

(Including the Holkar State and the Scindia-Neemuch State Railways.)

Summary of Silver, Packages and Covers etc. for.........................Station transferred from Guard.........................to Guard.........................at............Station on.........................

Stations to or Section.	Number of packages.	Number of Silvers.	Number of base coins sealed covers.	Number of booked covers.	Empty Canvas bags.	Guidances.			Misc.
						P.	C.	V.	
									A. Boxes...................... E. T. Boxes...................... F. Extinguishers .... Tail Lamp......................
									D. Lists for Covers. Circulars. E. L. C. Bags Others.
Total ...									

To be prepared by each guard during his run in triplicate.

(1) for record, (2) for submission to D. T. S. (concerned) with guard's report and (3) for guard taking over.

....
Guard making over.

....
Guard taking over.

For Distt. Traffic Supdt.

30

किन्तु ऐसे लोगों के दुर्भाग्य से कहिये या उन के अति स्वार्थ, सत्ता-लोलुपता आदि के कारण, या शुभाग्य से देशों में ही जनता के विद्रोह और प्रजातंत्र की भावनायें प्रबल हुई गईं और राज्य -वादियों को प्रजा की सत्ता माननी पड़ी। फिर भी जनता से तो वे अपने गुनों में बढ़े चढ़े हुये थे। अतः उन्हों ने एक ओर तो धर्मान्धता की जगह लेने को 'राष्ट्रीयता' नाम का सिद्धान्त गढ़ लिया और दूसरी ओर भिन्न २ प्रकार के 'द्राविड़ी प्राणायामों' द्वारा प्रजातंत्र को वर्ग राज्य में बदल डाला।

सफलता की शर्तें

वे जानते थे कि सच्चे जनतंत्र की सफलता जनतंत्र को छोटा २ पहुंचाने अर्थात सत्ता के बांट देने से ही हो सकती है। उन के गुरु ग्रीकस भी इस बात से परिचित थे। उदाहरण के लिये 'प्लेटो' ने ५००० जन संख्या का "आदर्श जनतंत्र" होने की कल्पना की है। 'अरस्तू' ने कहा है कि "एक लाख जन संख्या का भी अच्छा जनतंत्र बन सकता है।" आधुनिक विद्वानों में 'रूसो' ने कहा है कि "एक जनतंत्र की जन संख्या दस हज़ार से अधिक न होना चाहिये।"

इन तत्व वेत्ताओं ने आदिम पद तक अकारण और बिना अनुभव के तो लिख ही नहीं दिया है। 'जनतंत्र' शब्द का ही अर्थ है जनता का शासन, अर्थात जनता स्वयं अपने सामाजिक और राजनैतिक जीवन के उत्कर्ष और अपने विकास को सुलभ बनाने के उद्देश्य से विधान और नियम बनाती है और उन का पालन सब से कराती है। चूंकि ये विधान स्वत: उन के बनाए होते हैं, अत: वह प्रसन्नता से उन का पालन करती है। केवल लिखे और अज्ञान लोगों के लिये उसे शासन की आवश्यकता होती है।

किन्तु जनता शासन तब ही कर सकती है, जब उसे स्थानीय क्षेत्र में शासन के पूर्ण अधिकार हों। कारण प्रत्येक कार्य के लिये अभ्यास और अनुभव की ज़रूरत होती है। थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में सत्ता रहने से वे तो उस के विशेषज्ञ हो जाते हैं; परन्तु शेष लोग उस से अलग रहने के कारण उस विषय में अज्ञान बन जाते हैं और यहीं से बुराई पैदा होना शुरू हो जाती है। इस के अतिरिक्त जनतंत्र के सफल होने के लिये और भी कई बातें आवश्यक होती हैं, जैसे:—

(१) प्रतिनिधि या शासन कार्य के लिये, प्रत्यक्ष जाने और परखे हुए व्यक्तियों को चुनना।

(२) चुने हुए व्यक्तियों पर हर दम नियंत्रण रखना और जब चाहे उन्हें बदलने में समर्थ होना।

(3) स्वयं विधान बनाना।

(४) पड़ौसियों और प्रान्त एवं राष्ट्र सम्बन्धी प्रश्नों को सामूहिक रूप से तय करना।

(५) प्रत्येक व्यक्ति को योग्य नागरिक और सैनिक बनाना।

इन में से पहली बात को आधुनिक नीतिज्ञ भी स्वीकार करते हैं, किंतु उसे अमल में नहीं लाते। मानव जाति हमेशा छोटे २ समूहों में बंट कर बसती है। आज भी वह प्रायः उसी अवस्था में है। प्रायः जो लोग एक क्षेत्र में बसते थे। परस्पर विवाहादि करने लगते थे। जिन का रहन सहन, रीति रिवाज, आचार व्यवहार धीरे २ एक से बन गए धीरे २ वे ही एक जाति में परिणत हो गए। जाति शब्द को ही संस्कृत रूप ज्ञात है। कृष्ण ने जो महान क्षत्रिय संघ बनाया था, उस के लोग भी सामूहिक रूप से 'ज्ञाति' कहलाते थे। इस प्रकार उस युग में 'ज्ञाति' शब्द एक संस्कृति वाले राष्ट्र का बोधक था। किन्तु यह पीछे के युग की बात है। पहले इन समूहों का नाम 'जाति' पड़ा ही इसलिये कि वे बिना जाने बूझे किसी को अपने संगठन में सम्मिलित नहीं करते थे। क्योंकि 'ज्ञात' शब्द का अर्थ ही है—जाना हुआ

जिस व्यक्ति को वह नहीं जानते थे वह उन की पंचायत का या उन के शासन का सदस्य या अधिकारी नहीं हो सकता था। क्योंकि उस पर उन का समाज कोई नियंत्रण नहीं रख सकता था। आज भी एक २ जाति में अनेक वंश और गोत्र पाए जाते हैं, जो स्पष्ट बताते हैं कि वे एक वंश के नहीं हैं। फिर भी आज ~~छ~~ भी उन का अनुशासन बहुत कुछ एक ही वंश (सुगठित वंश) के समान बना हुआ है। ~~अर्थात्~~ परन्तु इस नियम का पालन छोटे ही क्षेत्र में हो सकता है और तभी शासन यंत्र पर जनता का सच्चा शासन हो सकता है। दूसरा नियम भी ऐसी जातियों में सदा रहा है और आज की स्थिति के अनुसार आज भी है।

तीसरी बात भी उन में विद्यमान है। यद्यपि राजनीति से सम्बन्ध छूट जाने पर वह रूढ़ि मात्र रह गई है और उस का क्षेत्र केवल अपने २ समाज के प्रश्नों तक सीमित रह गया है। फिर भी, आज भी, जाति के रिवाजों और नियमों में कोई भी परिवर्तन, प्रत्येक जाति सामूहिक रूप से ही कर सकती और करती है।

चौथी चीज़ से ~~उन का न केवल~~ पड़ौसी समूहों और राष्ट्रों से भिन्न २ संधियों और विग्रहों में सम्पर्क होने का, न केवल उन का दृष्टिकोण विशाल होता था, प्रत्युत उन्हें अपने छोटे दायरे में ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में व्यवहार करने एवं उस के पेचीदा प्रश्नों को हल करने के तरीकों और सिद्धान्तों का भी ज्ञान होता था। और पांचवीं बात तो उन की रक्षा और उन्नति के लिये आवश्यक थी ही।

ग्रीकों ने भी अपने नगर राज्य इस पुराने आधार पर ही बनाए थे। वहां की शासन सभाओं में न केवल आन्तरिक विधानों को बनाने चलाने में प्रत्येक नागरिक व्यक्तिगत रूप से भाग लेता था प्रत्युत विदेशी राजदूतों से बात चीत और संधि विग्रह आदि के सब प्रश्न साधारण जनता की सभा करती थी।

इसी लिये ग्रीक तत्व वेत्ताओं ने छोटे २ क्षेत्रों वाले जनतंत्र बनाना आवश्यक बतलाया है न कि बड़े २ जैसे जनतंत्र, जिनमें प्रचार के बल पर केवल सुनी सुनाई बातों या लालच से प्रेरित हो कर जनता, अनजाने व्यक्तियों को अपने प्रतिनिधि और शासक चुनने को बाध्य होती है।

छोटे २ बनाने के लिये एक और भी कारण है। छोटे २ होने से जनतंत्र ऐसी इकाइयों में बांटा जा सकता है, जिस में लोग भावों, रिवाजों, विचारों और जातीय दृष्टि से भी एक दूसरे के अधिक निकट हों। इन में से कुछ या अनेक बातों में भिन्नता रखने वाले पड़ौसी समूहों के शामिल कर देने से उस जनतंत्र में वह ऐक्य और अनुशासन नहीं रहता, जो उपरोक्त प्रकार के समूह में रहता है। न उन के इस प्रकार के भेद भाव से विरोधी लाभ उठा सकते हैं न जातीय विद्वेष की गुंजाइश रहती है।

किन्तु जैसा कि हम बता चुके हैं, पाश्चात्य शक्तियों ने विवश हो कर जनतंत्र को स्वीकार किया था और इस लिये उन का प्रयत्न बराबर उन्हें असफल करने का रहा है। इसी दृष्टि से उन्हों ने - लोगों में स्वभावतः मौजूद देश-प्रेम या अपने देश और स्थान के मोह का लाभ उठा कर 'राष्ट्रीयता' के सिद्धान्त को जन्म दिया और उन में प्रजातंत्र के नाम पर केन्द्रीय सत्ताएं कायम कीं। स्वभावतः सत्ता का विकेन्द्रीकरण न होने से उन्हें जनता के विभिन्न वर्गों और समूहों के स्वाभाविक एवं योजना पूर्वक पैदा किये हुए राग-द्वेष का लाभ मिला और वे आज तक भी सच्चे जनतंत्र की स्थापना को टालने में सफल हुए हैं। एक बात और। पहले जनतंत्र वादी राष्ट्र का लक्षण उसके बनाने वाले मनुष्यों की सामाजिक स्थिति होती थी। भौगोलिक बन्धन,

उस के साथ अनिवार्य न होता था। क्योंकि राष्ट्र तो मनुष्यों से बनता है। किन्तु आधुनिक नीतिज्ञों ने उपरोक्त लक्षण की सर्वथा उपेक्षा करके केवल भौगोलिक एवं राजनैतिक तात्विक राष्ट्र को ही सब से अधिक महत्व दे दिया है। उदाहरण के लिये नीचे राज्य और राष्ट्र की कुछ व्याख्याएं हम उद्धृत करते हैं। सब से उदार व्याख्या फिलीमोर (Phillimore) की है। उस का कहना है कि 'अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से राष्ट्र के लक्षण इस प्रकार हैं:—

"A people permanently occupying a fixed territory, bound together by common laws, habits & customs into one body politic, exercising through an organized Government independent sovereignity & control over all persons & things within its boundaries, capable of making war & peace & of entering into all international relations with the communities of the globe."

~~सारांश~~ भावार्थ यह कि 'स्वतंत्र' राष्ट्र के निम्न लक्षण होने चाहियें:—

(१) स्थायी रूप से उसका एक निश्चित भू भाग पर अधिकार हो।
(२) उस के निवासी एक समान कानूनों, रहन सहन एवं रिवाजों द्वारा एक राजनैतिक संगठन या समूह के रूप में आबद्ध हों।
(३) एक संगठित सरकार द्वारा पूर्ण स्वतंत्र राज्य सत्ता का उपभोग करते हों — अपनी सीमा में तमाम व्यक्तियों और वस्तुओं या पदार्थों पर नियंत्रण हो, संधि-विग्रह के अधिकार हों और समस्त संसार के

35

70

राष्ट्रीयता

एक और नवीनता जो पाश्चात्य देशों से पैदा की है वह है आधुनिक 'राष्ट्रीयता'। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन भारत में भी [illegible] राष्ट्रीयता की भावना अवश्य समझी जाती थी [illegible] बहुत [illegible] अपने [illegible] श्रेष्ठ [illegible]

[illegible] प्राचीन समूहों के उदाहरण [illegible] से कुछ अधिकार ले जाने से [illegible] लिखे और चलाने ने उस प्रदेश का [illegible] उस युग में देश भक्ति और [illegible] के मुख्य प्रेम का [illegible] राजनीतिज्ञों ने राष्ट्रीयता को अधिक बना दिया है। [illegible] कि वह देव भक्ति से भी [illegible] समूहों को [illegible] और सिद्धान्तों के लोगों को [illegible] से बांधा जाता है [illegible] में लड़ने का [illegible] में कर दिया जाता है। [illegible] तब के लिये विधान [illegible] लिखा जाता है [illegible] लोगों को उस [illegible] किया जाता है।

(आगे पृ. 24 की पीठ पर)

Job P. Press, Ajmer.—2,570 Bks.—9-7-37.

T. 32 B.
R. I.-July 1937.

B. B. & C. I. Railway Company.

(Incorporated in England by Special Act of Parliament.)

(Including the Holkar State and the Scindia-Neemuch State Railways.)

Summary of Silver, Packages and Covers etc. for .... Station transferred from Guard .... to Guard .... at .... Station on ....

Stations to or Section.	Number of packages.	Number of Silvers.	Number of base coin sealed covers.	Number of booked covers.	Empty Canvas Bags.	Guidances. P.	Guidances. C.	Guidances. W.	Misc. A. Boxes.	Misc. E. T. Boxes.	Misc. F. Extinguishers.	Misc. Tail Lamp.	D. Lists for Covers.	D. Lists for Circulars.	D. Lists for F. L. C. Base Others.
Total ...															

To be prepared by each guard during his run in triplicate. (1) for record, (2) for submission to D. T. S. (concerned) with guard's report and (3) for guard taking over.

.... Guard making over.

.... Guard taking over.

For Guards Taking Over.

136

28

राष्ट्रों से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और फ़ैसले करने में सक्षम हों।

प्रो. विको (Vico in 1725) ने और स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा था कि -

"Nation is a natural society of men, who by reason of unity of territory, origin, custom & language are drawn into a community of life & of conscience.

अर्थात् " राष्ट्र - मनुष्यों का वह प्राकृत समाज है, जो भौगोलिक उत्पत्ति या जाति, रिवाजों एवं भाषा की एकता के कारण एक समान ~~संस्कृति~~, जीवन और विश्वासों वाली जाति के रूप में संगठित हो।"

हमारे स्वदेशी विद्वान श्री. आशीर्वादम् अपनी 'पोलिटिकल थ्योरी' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि -

" जनता को राष्ट्र का रूप देने वाले मुख्य तत्व ये हैं :- भौगोलिक एकता, एक ही समाज और संस्कृति के व्यक्तियों का समूह, एक संस्कृति, एक भाषा, एक इतिहास, एक समान आर्थिक हित, एक से धर्म, रिवाज और परम्पराएं एवं राजनैतिक संस्थाएं और एक सी ही आशाएं तथा आकांक्षाएं।"

आपने और भी स्पष्ट लिखा है कि - " जहां राज्य केवल एक ही जाति या राष्ट्र से बना है, वहां 'राष्ट्रीय राज्य' होता है। किन्तु जहां राज्य में ~~कई~~ एक से अधिक राष्ट्रीयता या जातीयता वाले व्यक्ति रहते हों, वहां एक राष्ट्र और राज्य एकार्थवाची नहीं हो सकते।"

'धार्मिक आधार' को छोड़ कर देखा जाय तो एक प्रकार से यह व्याख्या सब से उत्तम है और ऊपर दी हुई पुरानी विचारधारा से मिलती हुई है।

किन्तु अन्य पाश्चात्य नीतिज्ञों ने सब से अधिक सत्ता पर बल दिया है। उनमें से बहुतेरों ने जनता के उद्देश्य को भी उस में से बहिष्कार ही कर दिया है।

70

37

सामुदायिकता से भी बुरी

साथ ही कि मेगापोलिस(सिटी) ने 'राष्ट्रीयता' और देश
सम्प्रदायवाद से भी बुरा बना डाला है। जिस प्रकार
धर्म के नाम पर लोगों में उन्माद भरकर उनसे
घोर अनर्थ और अमानुषिक कार्य कराये जाते हैं
उसी प्रकार राष्ट्रीयता का प्रयोग किया जाता है।
महात्मा 'टॉलस्टाय' ने लिखा है —
"हमारी याद की बात है कि जर्मनी के शासकों ने
अपनी प्रजा को संकुचित देशभक्ति से इतना
मस्त कर दिया कि वहां अनिवार्य सैनिक भरती का
कानून जनता की हर्ष ध्वनि के साथ पास हो गया।
पुत्रों, पिताओं, पतियों, विद्वानों और धर्मात्माओं को
नरसंहार करने की विधिवत शिक्षा दी जाने लगी।
सब अपने अफसरों के आज्ञाकारी सेवक बन गए।
उन्हें सदा इस प्रकार तैयार रहने की शिक्षा दी गई कि
वे आज्ञा मिलते ही चाहे जो भी हो उसे मार
डालें। उक्त विल्हेल्म द्वितीय ने [illegible] अधिकारियों
जर्मनों को पीड़ित और दलित देशों [illegible]
अपने स्वत्वों के लिये लड़ने वाले स्वदेशी श्रमजीवियों,
[illegible] हुए नहीं, बल्कि अपने माता पिता और भाई
गोली से मार देने में नाम मात्र की आगा पीछा न होना
चाहिये।"

(शेष पृष्ठ २५ की ओर)

Job P. Press, Ajmer.—2,570 Bks.—9-7-37.

T. 32 B.
R. I.-July 1937.

B. B. & C. I. Railway Company.

(Incorporated in England by Special Act of Parliament.)

(Including the Holkar State and the Scindia-Neemuch State Railways.)

Summary of Silver, Packages and Covers etc. for .... Station transferred from Guard .... to Guard .... at .... Station on ....

Stations to or Section.	Number of packages.	Number of Silvers.	Number of base coins sealed covers.	Number of bookell covers.	Empty Canvas bags.	Guidances. C.	Guidances. V.	Misc.
Total ...								

Misc.: A. Boxes........ E. T. Boxes........ F. Extinguishers........ Tail Lamp........ D. Lists for Covers. Circulars. H. T. C. Bags. Others.

To be prepared by each guard during his run in triplicate.
(1) for record (2) for submission to D. T. S. (concerned) with guard's report and (3) for guard taking over.

.... Guard making over.
.... Guard taking over.

For Distt. Traffic Supdt.

38

कुछ उदाहरण लीजिये।

मि. हालैंड कहते हैं कि राष्ट्र के लक्षण हैं - Numerous assemblage of human beings generally occupying a certain territory among whom the majority or an ascertainable class of persons is, by the strength of such majority made to prevail against any of their number, who oppose it. अर्थात "असंख्य मनुष्यों का वह समूह, जिस का साधारणत: एक निश्चित भूभाग पर कब्जा हो और जिस में बहुमत या बहुमत के बल पर अपना विरोध करने वाले को अपना अधिकार मानने को बाध्य किया हो।" यहां अल्पमतीय जातियों को, उन की इच्छा के विरुद्ध विवश होने वाला समूह भी राष्ट्र मान लिया गया है।

मि. इलियट और मार्क कहते हैं - Territorial superiority or sovereignity of the state over all within its boundaries & complete freedom from external control. अर्थात भौगोलिक पूर्ण स्वामित्व या ~~[illegible]~~ राज्य की सीमा के भीतर की सब चीजों पर उस का पूर्णाधिकार और बाहरी नियंत्रण से सर्वथा मुक्त।

मि. लास्की - It is by the possession of sovereignity that the state is distinguished from all other forms of human association. अर्थात "राज्य का पूर्णसत्ताधिकारी होना ही उसे सब प्रकार के मानव संगठनों से अधिक विशेषता है। इन व्याख्याओं में मिलते हुए प्रायः इसी तरह हॉब्स, बैन्थम, आस्टिन और लेविस के मत हैं।

कहना व्यर्थ है कि इसी नीति का परिणाम नाजीवाद और फासिज्म थे, जिन्हों ने राष्ट्रीय समाजवाद के नाम पर एक प्रकार से ही योरोप में स्वेच्छाचारी शासन स्थापित और प्रचलित करने की चेष्टा की। इसी लिये कार्ल मार्क्स को कहना पड़ा कि "आधुनिक सब ही राज्य गरीबों को लूटने वाले पूंजीपतियों की एजेंसियां हैं।"

※

प्रसिद्ध [illegible]

(पिछले पृष्ठ की पीठ से आगे)

और यह सब क्रिया छिप नहीं जाता है। इस बारे में बच्चों 'सिल' कहते हैं कि — "पाश्चात्य देशों में सब स्कूलों में यही बताया और पढ़ाया जाता है कि उनका मुख्य धर्म उस राष्ट्र के प्रति है, जिसके वे नागरिक हैं और यह राष्ट्र के नियमों और विधानों का पालन [illegible] विषय पर कोई शंका न करें, इस लिये उन्हें छात्र इस असत्य राजनीति और प्रेमपूर्ण अर्थ [illegible] पढ़ाया [illegible] झूठा इतिहास जाता है। उन्हें दूसरे राष्ट्रों के दोष पढ़ाए जाते हैं पर अपना राष्ट्र जितना अन्याय अत्याचार करे, उसकी उन्हें सच्चे रूप में कोई सूचना नहीं दी जाती। उन्हें बताया जाता है कि स्वदेश जिन २ युद्धों में भाग लेता है, वे रक्षा के लिये लड़े जाते हैं। इसी तरह दूसरे राष्ट्रों के बारे में कहा जाता है कि वे आक्रमण [illegible] आक्रमण। जब उन का देश दूसरे देशों को जीत कर अपने में मिलाता या अपने आधीन करता है [illegible] सब जनता को बताया जाता है कि हम वहां अपनी उच्च संस्कृति को फैलाना चाहते हैं। उन्हें सभ्य बनाना और [illegible] इन्हें देना ईसाई धर्म सिखाते हैं। उन की [illegible] उद्धार करना हमारा धर्म है। हम इन्हें शासन [illegible] सुधारना चाहते हैं। आदि। बच्चों [illegible] पढ़ाया जाता अन्य देश धर्म और नीति से हीन हैं।

(शेष पृष्ठ २८ पर)

69

Job P. Press, Ajmer.—2,570 Bks.—9-7-37.

T. 32 B.
R. I.-July 1937.

B. B. & C. I. Railway Company.

(Incorporated in England by Special Act of Parliament.)

(Including the Holkar State and the Scindia-Neemuch State Railways.)

Summary of Silver, Packages and Covers etc. for..................Station transferred from Guard..................to Guard..................at..........Station on..................

Stations to or Section.	Number of packages.	Number of Silvers.	Number of base coins sealed covers.	Number of booked covers.	Empty Canvas bags.	Guidances P.	C.	V.	Misc.
									A. Boxes.........3.......... E. T. Boxes.............. F. Extinguishers........... Tail Lamp..............
									D. Lists for Covers. Circulars. E. L. C. Bags Others.
Total ...									

To be prepared by each guard during his run in triplicate.

(1) for record, (2) for submission to D. T. S. (concerned) with guard's report and (3) for guard taking over.

....
Guard making over.

....
Guard taking over.

For Record.

राज्य का संगठन

पाश्चात्य विद्वान राजनीति ~~कछ~~ ~~मान~~ आठ अंग मानते हैं। (१) राज्य, (२) सरकार, (३) व्यवस्थापिका, (४) समाज (५) नैतिक सिद्धान्त, (६) जनमत वृत्ति, (७) इतिहास, (८) अर्थ।

इनमें राज्य राष्ट्र की [illegible] स्वामी सत्ता का नाम है। सरकार उस सत्ता को चलाने वाले मंत्रिमंडल आदि हैं। ये बदलते रहते हैं। अतः राज्य से भिन्न हैं। किन्तु चूंकि राज्य की नीति का संचालन यही करते हैं, इसलिये वे सरकार या शासक कहे जाते हैं। ~~कहा है कि~~ कहा है कि:—
If the ultimate sovereign in a democratic state is the people, the legislative sovereign is the Government. अर्थात यदि एक प्रजातंत्री देश में अन्तिम या सर्वोच्च शासक जनता है, तो विधानात्मक सत्ता सरकार की है। व्यवस्थापिका काम जनता की ओर से विधान बनाना है। शेष बातों का विवेचन ऊपर हो चुका है।

किन्तु, विशेष ध्यान देने की बात यह है कि उन्हों ने सब चीजों को राज्य का अंग माना है। यह मानते हुए भी कि राज्य को समाज ने जन्म दिया, समाज को भी उसी का अंग माना है। मानो राज्य से ही ये सब चीजें उत्पन्न हुई हों। इस ढंग से वे पाठक के मन पर यह प्रभाव डालते हैं कि राज्य स्वतः एक सिद्धान्त है और उस की रक्षा ही परम-लक्ष्य है। उस के लिये और चीजों का बलिदान किया जा सकता है। प्रायः इसी आधार पर वे सत्ता के केन्द्रीकरण और जनमत को दबाने के कानून बनाते हैं। एक ओर वे इस प्रकार जन साधारण को अयोग्य बनाते हैं और दूसरी ओर उसी अयोग्यता का बहाना बनाकर उत्तेजन के

स्वाभाविक अधिकारों से वंचित रहते हैं। आज वे यह तो मानने को बाध्य हैं कि समाज या जनता ही राज्य की जननी और है। किंतु कहते हैं कि राजनीति का संचालन केवल गठित और जागृत लोग ही कर सकते हैं और ऐसा भाग समाज में बहुत थोड़ा होता है। अत: स्वभावत: सत्ता थोड़े ही हाथों में रहती है। किन्तु यह दलील स्विसों के समाज में कोट को परीक्षण नहीं करता। यह बात नहीं है कि स्विस जनतंत्रों को विरुद्ध में सर्वथा अभाव हो गया है। योरोप में ही स्विटजरलैंड, और राष्ट्रों के उसे विरुद्ध बनाने के बहुत प्रयत्न करते थे। वे पुराने ही ढर्रे पर अड़ा रहा और आज भी वहां का शासन बहुत कुछ पुराने नियमों पर ही है। देश भी छोटा सा है, फिर भी वह बराबर अपनी स्वतंत्रता भी कायम किये है, वह पाश्चात्य विद्वानों की कई बातों का जीता जागता जवाब है। उदाहरण के लिये पाश्चात्य विद्वानों की उस प्रकार के प्रजातंत्रों के विरुद्ध मुख्य दलीलें ये हैं:—

(१) आम जनता शासन की पेचीदगियों को नहीं समझती। अत: राजनीति और विधान चुने हुए शिक्षितों के ही हाथों में रहने चाहिये।

किंतु वहां व्यवस्थापिका के बनाए कानूनों पर बालिग मत जनता का लिया जाता है, तब वह कानून बनता है, अन्यथा नहीं। फिर भी अब तक के लम्बे समय के परिणामों से यही साबित हुआ है कि आम जनता के निर्णय ही अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण थे।

(२) आम जनता बुद्धिपूर्वक योग्य आदमी का चुनाव नहीं कर सकती।

किन्तु वहां अध्यापक और प्रत्येक विभाग के मुख्य अधिकारी भी आम जनता द्वारा चुने जाते हैं, फिर भी वे देश

२५

वे ऐसे नालायक साबित नहीं हुए, जितने कि अन्य देशों में बुद्धि पूर्वक नियुक्त किये हुए व्यक्ति होते हैं।

(३) ऐसे प्रजातंत्र बड़े राष्ट्रों के मुकाबिले में स्वतंत्र नहीं रह सकते।

किन्तु स्विटजरलैंड नैपोलियन काल के बाद से बराबर स्वतंत्र है। यद्यपि पिछले दो महायुद्धों में ही उस के आस पास अनेक बड़ी २ सत्ताओं और बड़े २ राष्ट्रों का तख्ता उलट चुका।

(४) छोटे राष्ट्र वर्तमान युग के राष्ट्रों के मुकाबिले औद्योगिक उन्नति नहीं कर सकते।

किन्तु स्विटजरलैंड को वे स्वयं भी पिछड़ा हुआ राष्ट्र नहीं मानते। वे केवल एक ही बहाना ले के बचते हैं, वह यह कि ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र छोटे देशों में ही सम्भव है। बड़े देशों में वह सफल नहीं हो सकता। परन्तु रूसी क्रान्ति के बाद के वहां के "बोल्शेविक" शासन ने उन के इस बहाने की भी धज्जियां उड़ा दी हैं। रूस छोटा देश नहीं। फिर भी उस ने स्विटजरलैंड से भी अधिक जनतंत्रात्मक शासन स्थापित कर के दिखा दिया है एवं पिछले महायुद्ध में उस पद्धति की अजेयता का भी परिचय दे दिया है। उस ने प्रत्येक गांव और प्रत्येक जाति को स्वराज्य दे दिया है, जिस से उस पद्धति की रक्षा के लिये प्रत्येक व्यक्ति इतना सन्नद्ध है कि सारे संसार के राष्ट्रों में किसी को भी वहां एक व्यक्ति जासूस बनाने को नहीं मिलता।

(आगे पृष्ठ ३४ से शुरू)

(पृष्ठ २४ की पीठ से आगे)

सार यह कि राष्ट्रीयता के द्वारा राज्यवादी वही काम निकालते हैं, जो पोप आदि धर्म से निकालते थे। यह उससे भी बड़ा जनता को उल्लू बनाने का नुसखा बना लिया गया है। पहले केवल फौजों को अन्धानुगामिनी बनाया जाता था अब सारी जनता को बनाया जाता है। हिटलर और मुसोलिनी ने तो इस का चरम विकास कर के दिखा दिया। इस सम्बन्ध में नीचे दी हुई 'फ़ासिस्ट' प्रार्थना देखने योग्य है, जिसे राष्ट्रीयता का उग्रतम रूप कहा जा सकता है। उस में कहा जाता है:—

"हे परमात्मन! तू सब अग्नि शिखाओं का उद्दीपक है, मेरे हृदय में भी इटली की अग्नि की शिखा प्रदीप्त कर! मेरे ग्रन्थों में सद्बुद्धि पूर्ण विचार और मेरी बन्दूक में अपनी इच्छा (!) भर। (मुसोलिनी ने फ़ासिस्ट युवकों को एक हाथ में किताब और एक हाथ में बन्दूक रखने का यह अर्थ और उद्देश्य बताया था कि 'शिक्षा प्राप्त करो इटली को बड़ा बनाने के लिये युद्ध करो'!) सड़क पर टहलते, समुद्रतट पर घूमते, वनस्थली के बीच, जहां भी मैं होऊं, मेरी 'लीबिया' (जो पहले रोम के आधीन था) पर तीखी निगाह रहे। इसी प्रकार अन्य देशों पर!"

"हम अपनी मातृभूमि को अधिकाधिक विस्तृत (राज्य बढ़ाकर) करते जांय! हे परमात्मन तू ड्यूचे (मुसोलिनी) के रूप में सदा - हमारे माते पर भी इटली की रक्षा कर!"

यह तो हुई प्रार्थना, अब पाठक 'फ़ासिस्ट' युवकों के लिये धर्म के दस लक्षणों की तरह लिखित — दस आदेश देखें। कहा है कि:—

"(१) यह बात गांठ बांध लो कि 'फ़ासिस्ट' सदा सैनिक है। वह कभी चिर शान्ति पर विश्वास नहीं करता।

(२) तुम्हें राष्ट्र द्वारा जेल में डाला जाय तो भी यही समझो कि वह तेरे ही भले के लिये है।

(३) तुम्हें पाखाना भी साफ़ करना पड़े, तो समझो की तू राष्ट्र की [illegible] रहा है।

(४) सब फासिस्ट तेरे भाई हैं! (मनुष्य मात्र नहीं!) क्योंकि वे तेरे साथी हैं और तेरे ही समान विचार रखते हैं।
(५) तुझे शस्त्रास्त्र इस लिये नहीं दिये गए हैं कि तू इन में ज़ंग लगने दे, बल्कि इस लिये कि तू सदा युद्ध की तैयारी कर!
(६) कभी मत कहना कि तुझे कम वेतन मिलता है। क्योंकि यदि दूर-दृष्टि से देखा जाय तो तू स्वयं अपने को वेतन देता है (फासिस्ट होने से शासक दल या जाति का है)। तू ने ही तो सरकार का निर्वाचन किया है और तू उसी की सेवा के लिये सैनिक वर्दी पहनता है।
(७) सैनिक शासन का प्राण अन्ध-आज्ञा-पालन है।
(८) मुसोलिनी जो कहता है, वही ठीक है!
(९) सैनिक आज्ञा उल्लंघन करने का कोई प्रायश्चित्त नहीं है।
(१०) भगवान् डूचे (मुसोलिनी) को चिरंजीवी कर!"

इन बातों से साफ़ है कि आधुनिक राष्ट्रीयता मनुष्य को कहां ले जा रही है। यद्यपि करते सब राष्ट्र यही हैं। रूस भी स्वार्थी और राज्यवादी लोग सत्ता अपने हाथों में - छल बल - से ले कर, राष्ट्र के नाम पर लोगों को अन्धानुगामी और अनुशासन के नाम पर विवेक-हीन बनाते हैं। दूसरे राष्ट्रों की आज़ादी छीनने को द्राविड़ी प्राणायाम से काम लेते हैं। पहले उस राष्ट्र के विरुद्ध विरोधी प्रचार द्वारा विरोधी भाव पैदा करते हैं, फिर उन के आक्रमण करने का आतंक फैला देते हैं और फिर कोई बहाना खड़ा कर के युद्ध छेड़ देते हैं। मुसोलिनी ने यही सीधे तरीके से कर डाला। आत्म रक्षा का ढोंग नहीं रचा। इस से साफ़ है कि राष्ट्रीयता का जामा ही लोगों को फिर स्वेच्छाचारी शासन की ओर ही ले जा रहा है, उसी के द्वारा दूसरे देशों को गुलाम बनाया जाता है, उसी की दुहाई देकर देश के भीतर विरोधी दलों को दबाया जाता है और उसी के द्वारा मानवता को

हनन किया जाता है। 'रोम्यां रोलां' जैसे मनीषि ने जब इस प्रकार की राष्ट्रीयता के विरुद्ध आवाज़ उठाई तो उसे फ्रांस से अपनी जान बचा कर, महायुद्ध के दरमियान में ही स्विटज़र-लैंड भाग जाना पड़ा। इसी प्रकार साम्यवादी 'जां जोरेस' को, एक उन्मत्त युवक ने जान से मार डाला और 'आंद्रे गिल्बो' को सैनिक अदालत ने फांसी की सज़ा दे दी। किन्तु युद्ध के बाद वह हाई कोर्ट से निर्दोष साबित हो कर छूटा। ~~क्योंकि~~ कारण साफ़ है। शस्त्रास्त्र उत्पादक पूंजीपति और राज्यवादी मिल कर, सारे समाचार पत्रों और संस्थाओं को खरीद, उनके द्वारा ऐसा वायुमंडल बना देते हैं कि साधारण मनुष्य विवेक और मानवता को खो बैठता है।

इसी लिये पाश्चात्य विद्वान तक इस राष्ट्रीयता से ऊबता गए हैं। ई. बैल्फ़ोर्ट बैक्स ने तो साफ़ कह दिया है कि:-

The time is fast approaching, when to call a man a patriot will be deepest insult, you can offer him. Patriotism now means advocating plunder in the interests of the previleged classes of the particular state system, in which we have happened to be born. (Patriotism & Govt)

अर्थात - "वह समय बहुत जल्दी आ रहा है, जब किसी को 'देशभक्त' कहना, उस का सब से गहरा अपमान करना समझा जायगा। अब देशभक्ति का अर्थ है - एक ऐसी विशेष राज्य व्यवस्था के, विशेष स्वार्थों वाले वर्ग के हित के लिये लूट करना, जिस में संयोग से हम पैदा हुए हैं।"

हमारे स्वदेशी विद्वान डा. हेमचन्द्र जोशी डी.लिट. (अमरीका प्रवासी) ने भी एक बार लिखा था कि —

"इस समय सारे विश्व 'देशभक्ति' रूपी महापाप के असह्य भार के नीचे दब कर चकनाचूर हो रहा है। क्या स्वर्ण भूमि अमरीका और क्या उद्योग-धन्धों में सब से उन्नत जर्मनी, क्या प्रबल प्रतापी फ्रांस और क्या अपने विशाल साम्राज्य से गर्वित स्फीत ब्रिटेन, क्या असीम साहसी और नीति निपुण छोटा जापान और क्या गृह कलह प्रेमी, परम स्वार्थी, असंगठित चीन - सब अपने सीधे सादे नागरिकों को देशभक्ति के मद में मत्त कर - एक दूसरे को कच्चा ही खा जाने पर उतारू हैं। एक राष्ट्र एक ओर दूसरे राष्ट्र से मित्रता की सन्धि करता है, दूसरी ओर उसे उखाड़ने के लिये गुप्त षड्यंत्र रचता रहता है, उस की उग्र राष्ट्रीयता उसे ऐसा करने को बाध्य करती है। इस का नाम सब देशों ने देशभक्ति या राष्ट्रीयता दे रखा है।"

हमारे देश में भी साम्प्रदायिकता का तांडव तो हम अभी देख चुके हैं, अब राष्ट्रीयता भी उसी पाश्चात्य शैली पर प्रगति कर रही है। अतः राजनीति के विद्यार्थियों को उसी से सावधान करने के लिये हम ने इस पर कुछ विस्तृत प्रकाश डाला है। जर्मनी में तो हिटलर जब 'जर्मन श्रम जीवी दल' बना कर मजदूरों को अपने जाल में फंसाने में असफल हुआ, तो उसने 'राष्ट्रीय साम्यवादी दल' बना कर उन्हें उल्लू बनाया। हिटलर के अनुगत गाटफ्रीड के २५ सिद्धान्त भी ऐसे ही पर स्पष्ट विरोधी थे। इन के चौथे सूत्र में पूंजीवाद, साम्यवाद, यहूदियों और

सब विदेशियों के विरुद्ध युद्ध घोषणा की गई थी, पाठक आश्चर्य होंगे कि लोग कैसे इतने मूर्ख बन जाते थे कि ऐसी बातों को भी मान लेते थे। किंतु यह तो पाश्चात्य प्रथा शैली हो चुकी है।

कुछ नए 'वाद'

पाश्चात्य लेखकों के इस प्रकार प्रत्येक सिद्धान्त और पद्धति का जान बूझ कर दुरुपयोग करते जाने से वहाँ कुछ नए 'वादों' का जन्म हुआ है। इनमें एक का नाम 'अराजकवाद' है और दूसरे का 'कोलेक्टिविज़्म।' साम्यवाद या सोशलिज़्म नाम से कुछ और भी वाद हैं, किन्तु उन्हें 'कोलेक्टिविज़्म' या 'कम्युनिज़्म' के क्रम विकास की सीढ़ियाँ ही कहा जा सकता है। कम्यूनिज़्म के आचार्य और आद्य प्रवर्तक 'कार्लमार्क्स' हैं। 'अराजकवाद' के आधुनिक आचार्य 'प्रिंस क्रोपाटकिन' और 'बाकुनिन' आदि गिने जाते हैं। दोनों के मोटे सिद्धान्त नीचे दिये जाते हैं:-

अराजक वाद

वैसे तो 'अराजक' या 'अराजकता' शब्द को पुराने और नए राज्यवादी नीतिज्ञों ने बहुत बदनाम कर दिया है। यहाँ तक कि लोग इन शब्दों को सुन कर ही नाक भौं चढ़ा लेते हैं, राजनीति सम्बन्धी पाठ्य पुस्तकों में भी इस का उल्लेख कतई नहीं आने दिया जाता। किन्तु निकट से अध्ययन करने पर वह वैसा प्रतीत नहीं होता। साधारणतः उस को हमारे विकृति-काल के साहित्य में 'मत्स्य-न्याय' नाम दिया जाता है, अर्थात जिस प्रकार जल में बड़ी मच्छी छोटी को खा जाती है, उसी प्रकार अराजक समूह में निर्बलों की रक्षा नहीं होती, "जिस की लाठी, उस की भैंस" वाली कहावत चरितार्थ होती है।

किन्तु अराजकवादी इतिहास और प्राकृतिक नियमों के आधार पर यह प्रमाणित करते हैं कि 'मनुष्य स्वभाव से

सामाजिक और शान्ति प्रिय प्राणी है, उस में विवेक है, प्रारम्भ में बहुत काल तक वह बिना किसी शासन के रहा और सुख, शान्ति में रहा, सब के मित्र हो रहा। लोग सब बातों की व्यवस्था पारस्परिक मिल कर, पारस्परिक निर्णय से कर लेते थे। एक व्यक्ति अपना भिन्नमत रख सकता था, समूह बहुमत के बल पर भी उसे विवश नहीं करता था। इतिहास से स्पष्ट है कि शासन चाहे किसी भी प्रकार का हो उसके दो परिणाम होते हैं:—

(1) जनता के प्रत्येक व्यक्ति की रुचि शासन में बराबर नहीं रहती। ~~[illegible]~~ शासन का काम कुछ थोड़े से ही लोगों के हाथों में रह जाता है। आम जनता शासन से दूर पड़ती जाती है और उस के शासन की योग्यता नष्ट हो जाती है। ऐसा होने पर स्वभावतः शासन करने वाले लोग शासन का दुरुपयोग करने लगते हैं।

2 किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था हो, वह व्यक्ति की स्वाभाविक आजादी को कम करती है और उस के विकास में बाधक होती है

सिद्धान्त की दृष्टि से अराजकवादी यह मानते हैं कि चूंकि प्रकृति ने प्रत्येक व्यक्ति को विचार करने, विचारों को प्रगट करने और उन के अनुसार आचरण करने में स्वतंत्र बनाया है। साथ ही मनुष्य सामाजिक प्राणी होने से उस में दूसरे साथियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की और परिस्थितियों के अनुसार अपने जीवन को ढालने की [illegible] शक्ति है। ~~[illegible]~~ : अतः उसे किसी शासन की ज़रूरत नहीं,

इस के ——— या समूह

अतिरिक्त जब सब मनुष्य समान हैं तब एक मनुष्य, दूसरे पर शासन कैसे कर सकता है?? चूंकि, शासन शब्द में ही बलपूर्वक शासन की बात मनवाने की भावना निहित है, इस लिये मानवता ~~और~~ और शासन दोनों ही परस्पर विरोधी चीजें हैं। शासन का होना ही इस बात का प्रमाण है कि शासकों में या तो मनुष्यता है ही नहीं या उन में ~~मनुष्यता की~~ कमी है। उन का कहना है कि मनुष्य का स्वभाव और कर्तव्य निजता ~~विकास के~~ अपनी शक्तियों को विकसित करने का है। किन्तु आज कल प्रत्येक शासन, मनुष्य में अपनी और अपने समाज की व्यवस्था को लेने की स्वाभाविक शक्ति होते हुए भी, भिन्न २ बहानों से, बहुसंख्यक लोगों को उस शक्ति के विकास का अवसर नहीं देता - ताकि उन की ठेकेदारी चलती रहे और स्थायी हो जाय।

वे कहते हैं कि आज भी ९४ प्रतिशत दुनियादारी के काम ऐसे हैं, जिन में शासन से कोई मदद नहीं ली जाती। सब बातों में लोग आपस के सलाह, समझौते और विश्वास से काम करते हैं। गांवों में और पंचायतों में आज भी लोग आपसदारी के नियमों का ही पालन करते हैं। यदि १०० घरों में से एक व्यक्ति भी किसी प्रश्न पर ९९ लोगों से सहमत नहीं है, तो वह अपने हृदय और विश्वास के, विरुद्ध झुकने से इनकार कर देता है। कई बार, एक बड़ा दल एक पक्ष में हो जाता है और उस मामले में औरों से अलग अपना अस्तित्व बना लेता है। झगड़े, धाड़, लड़ें आदि कहते हैं

बहुमत द्वारा इन्हें बाध्य नहीं होता। वे अन्य सब बातों में समूह के साथ सहयोग करते हैं, परन्तु मतभेद के प्रश्न/विषयों पर अलग होते हैं। ऐसे मतभेद विशेष अवसरों पर सम्मति से ही दूर होते हैं।

इस के सिवाय आज भी सैंकड़ों जातियां और कबीले देश में ऐसे हैं, जिन के यहां आधुनिक ढंग की कोई सरकार नहीं है। फिर भी उन का सामूहिक जीवन उतना ही सुखी और सम्पन्न होता है। अराजक सिद्धान्तों का समर्थन करते हुए प्रसिद्ध विद्वान 'हर्बर्ट स्पेंसर' ने कहा है कि:— Individual has a right to ignore a state. अर्थात व्यक्ति को भी राज्य के निर्णय की उपेक्षा करने का अधिकार है। बल पूर्वक किसी चीज को मनवाना मानवता और व्यक्ति की स्वाधीनता का विरोधी है।

अराजकवादी यह मानने से इंकार करते हैं कि अराजकता का अर्थ अव्यवस्था या मत्स्य न्याय है। उन के अनुसार और शब्द चिन्ह की दृष्टि से भी अराजक (Anarchist) शब्द राजवादी (Monarchist) का विरोधी है। वह एक तरह का पूर्ण प्रजातंत्र है, जिस में लोग ही शासन किया करते और अपनी पंचायतों द्वारा व्यवस्था करते हैं। उन में और दूसरे प्रजातंत्रों में निम्न मुख्य अन्तर है:—

(१) अराजकवादी व्यक्ति की स्वतंत्रता के पूर्ण पक्षपाती हैं, वे बहुमत या अन्य किसी बल द्वारा किसी को अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध बात मानने को बाध्य नहीं करते और

3C

अन्तिम स्थिति में उसे समूह से अलग हो जाने तक की आज़ादी दे देते हैं। इतिहास काल के भी ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। सिकन्दर और मालव क्षुद्रकों के संग्राम के अन्त में इन के बहुमत ने संधि करना स्वीकार कर लिया, किंतु एक बलवान अल्पमत को वह अपमान असह्य मालूम हुई। अतः स्वदेश-हित की दृष्टि से उन्होंने संधि तो हो जाने दी, किंतु उसे पारस्परिक करना अपने विश्वास के विरुद्ध ~~[illegible]~~ होने से वे निरन्तर चलते आए। उन का कहना है कि इच्छा के विरुद्ध रक्षा का किसी व्यक्ति या समूह को, अपने शासन में रखने से या तो वह भीतर ही भीतर विद्रोही बना रहेगा, या शासन को उसे पंगु बना कर रखना पड़ेगा। ये दोनों ही बातें सिद्धांत और मानवता के विरुद्ध हैं।

(2) आत्मिक वादी बड़े २ राष्ट्रों और साम्राज्यों के निर्माण के विरोधी हैं, उन का कहना है कि बहुमत वाली जाति के साथ, कि बहुमत के सिद्धान्तों के रहते हुए अल्पमत को कभी पूर्ण मानवी स्वतंत्रता मिल ही नहीं सकती। अनेक जातियां और समूह होने पर तो केन्द्र [illegible] कारण राज्यवादियों के उस की कठोरता का शासन और शासक हो जाता है और इसी लिये वे लोगों में प्रजा द्वारा बड़े २ राष्ट्र और साम्राज्य बनाने की भावनाओं को बढ़ाते हैं। अतः छोटे २ राष्ट्रों के संघ बनाना उचित है।

(3) आत्मिक वादी जहां एक ओर व्यक्तिगत स्वाधीनता और जीवन की आवश्यक सम्पत्ति आदि की प्रत्येक व्यक्ति को

आज़ादी देने के पक्ष में हैं, वहां आर्थिक सम्बन्ध में भी
विश्वास करते हैं और इस लिये उत्पत्ति और धन वृद्धि के
साधनों पर समूह का नियंत्रण रखने के भी पक्षपाती हैं।
ताकि जो कुछ उन्नति हो उस का लाभ सब को समान
रूप से मिले। आज भी कई ऐसे समूह हैं, जिन में कृषि
की भूमि का बंटवारा समूह करता और वह प्रत्येक व्यक्ति
और कुटुम्ब की आवश्यकतानुसार होता है। जब कोई नया
युवक बालिग होता है, तो उसे ग्रामपंचायत की ज़मीन में से
उसके योग्य भाग दिया जाता है। इसी तरह उद्योगों आदि की
उपज और बचत की व्यवस्था होती है। मध्य एशिया के कुछ
कबीलों में ऐसी भी पद्धति है कि ऐसी व्यवस्था होते हुए भी यदि
किसी के पास आवश्यकता से अधिक धन या सामग्री एकत्र हो जाय, तो वह
पंचायत को सूचित कर देते हैं और वह ~~[illegible]~~ उसे सामूहिक
हित या शिक्षा के काम में लगा देती है। अर्थात यह आर्थिक
सम्बन्ध बल पूर्वक कायम नहीं किया और किया जाता, प्रत्युत
ऐसे रिवाज और संस्कार ही बना दिये जाते हैं।

(४) आनन्दवादी संस्कृति का ध्येय संक्षेप में प्रत्येक व्यक्ति
की स्वाभाविक स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखते हुए उसे अपनी
सब प्रकार की शक्तियों के विकास का अवसर देना,
उस में सहायक होना और प्रत्येक धंधे को, समाज
की आवश्यकता पूर्ति और सब के समान उत्कर्ष की दृष्टि से एक दूसरे
से संगठित होना होता है। वह जनता में एक दूसरे से बढ़ने
की स्वार्थी स्पर्धा का विरोधी है, क्योंकि इस से मनुष्य का
विकास नहीं, पतन होता है।

इन के दो भेद

इन में भी दो भेद हैं। एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व महात्मा गांधी करते हैं। वे पेचीदा यंत्रों के विरोधी हैं, कारण न तो वे विशेषज्ञों और बड़ी पूंजी के बिना बन सकते हैं न विशेषज्ञों के बिना चल सकते हैं। ऐसी दशा में जन साधारण को इस विशेषज्ञ वर्ग के आश्रित हो जाना पड़ता है और यह विशेषज्ञ वर्ग भी अपनी स्थिति का शासक वर्ग की ही तरह दुरुपयोग कर सकता है। जिस प्रकार शासन सत्ता का केन्द्री करण जनता के लिये अहितकर है, उसी प्रकार धनार्जन की शक्ति का केन्द्रीकरण भी है। अतः औजार यंत्रादि ऐसे होने चाहियें, जिन्हें ग्रामीण कारीगर भी बनाना चलाना सीख सकें और समाज में बेकारी न हो।

दूसरी विचार धारा वाले पाश्चात्य अराजकतावादी हैं, जो छोटे यंत्रों का, पेचीदा होने पर भी, उत्पादन बढ़ाने और समय बचाने की दृष्टि से उपयोग करने के पक्ष में हैं। किन्तु वे ऐसे यन्त्रों का उत्पादन-वितरण आदि राष्ट्र और समूह के हाथों में रखने के पक्षपाती हैं। इसी प्रकार यंत्रों का उपयोग भी वे समूह या राष्ट्र के नियंत्रण और समूह के प्रत्येक व्यक्ति के समान हित की दृष्टि से ही करने के पक्ष में हैं। सार यह कि अराजकवादी मानवता का पुजारी है और वह प्रत्येक मानव के लिये स्वतंत्र विकास की न केवल आजादी और अवसर चाहता है प्रत्युत हर प्रकार के उत्पादन में प्रत्येक व्यक्ति का समान योग भी चाहता है। साथ ही इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह शासन का आश्रय भी नहीं लेना चाहता। जनसाधारण के चरित्र निर्माण द्वारा ही वह उसे पूरा करने का पक्षपाती है। उसका विश्वास है कि जन-साधारण को आज भी स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो वे स्वतः इस मार्ग को

अपना लेंगे। वह मनुष्य में केवलमात्र लालच को बढ़ाने का विरोधी है। अराजकवाद की भावना मानव प्रेम मूलक होने से स्वभावतः सत्य और अहिंसा प्रधान है। मनुष्य के नाते वह अपने विरोधी के प्रति भी दुर्भाव नहीं रखता। एक और विशेषता यह होती है कि अराजकवाद में बड़ा संघ होते हुए भी विधान बनाने का अधिकार जनता को ही रहता है, संघ के सार्वदेशिक विधानों पर भी प्रत्येक समूह की स्वीकृति ज़रूरी होती है।

बोल्शेविज़्म

इस का अन्तिम ध्येय तो अराजक समाज व्यवस्था ही है। परन्तु उसका विश्वास है कि हज़ारों वर्षों की राजवादी और पूंजीवादी व्यवस्था ने मनुष्य के मानव-संस्कारों को सर्वथा कुचल दिया है, शासक और पूंजीपति वर्ग में तो वे सर्वथा रहे ही नहीं; उन को सत्ता और लालच ने इतना अन्धा, बहरा बना दिया है कि वे मानवता की-अपने अन्तरात्मा की पुकार सुनने में भी असमर्थ हैं। उन की संस्कृति ही यह अमानुषिक जीवन बन गया है। साथ ही उन्हों ने इतिहास और धार्मिक पद्धतियों को भी भ्रष्ट कर दिया है। अतः वे आमूल क्रान्ति के पक्षपाती हैं और जिस प्रकार जल्दी से जल्दी यह व्यवस्था नष्ट हो जाय उसी मार्ग को अपनाना विहित समझते हैं। वे उत्पादन के साधनों और व्यापार को एकदम राष्ट्रीय बना देने के पक्ष में हैं। व्यापार भी समाज और देश की आवश्यकता पूर्ति के बाद बचे हुए पदार्थों की ही और वह भी वस्तुओं के परिवर्तन के रूप में वाञ्छनीय मानते हैं।

वे यह भी आवश्यक मानते हैं कि जब तक बड़ी २ राजवादी शक्तियां मौजूद हैं, जो इस नए समाज को नष्ट करने में कोई कोर कसर नहीं रखेंगी, तब तक राष्ट्र को विमान, यंत्रों और आधुनिकतम सैनिक शिक्षा द्वारा आत्मरक्षा के लिये तय्यार रखा जाय। यह सब व्यवस्था राष्ट्रीय कारखानों और किसानों द्वारा हुई हो। दूसरी ओर संस्कृति के परिवर्तन और समाजवादी अर्थनीति ~~और~~ को व्यावहारिक रूप देने का कार्य ज़ोरों से किया जाय। यह भी कि शासन सर्वथा गरीब वर्ग के समाजवादी व्यक्तियों के ही हाथों में दिया जाय ताकि वे एक मत से आमूल

क्रान्ति के कार्यक्रम को अमल में ला सकें।

बोल्शेविज्म हिंसा का अवांछित प्रयोग करने का भी पक्षपाती नहीं है। वे केवल उन्हीं लोगों पर बल प्रयोग करते हैं, जो उन के मार्ग में अड़चन पैदा करते हैं और नई व्यवस्था का सक्रिय विरोध करते हैं, अन्यथा शान्त रहने वाले लोगों को वे धीरे २ अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक समानता की स्थिति में लाने का प्रयत्न करते हैं।

यद्यपि वे एक मानव जाति में विश्वास करते हैं फिर भी वे बनी हुई जातियों को नष्ट नहीं करते। नष्ट करने के स्थान पर वे उन के पहले से मौजूद जातीय संगठन और भ्रातृभाव का उपयोग उन का स्वतंत्र जनतंत्र बनाने में करते हैं, जिस से किसी जाति से संघर्ष नहीं होता, बोल्शेविक भी छोटे २ और समान संस्कृति वाले लोगों के जनतंत्र बना कर उन के संघ बनाने की परिपाटी में विश्वास करते हैं।

नैतिक दृष्टि से वे प्रत्येक पुरुष स्त्री को समान स्वतंत्रता देते हुए भी संयत और विवेक शील जीवन के पक्षपाती हैं। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को समान सुख-साधन और विकास-सुविधाएं देना भी उन का ध्येय है। अन्यत्र दी हुई मॉ. स्टैलिन की विचारधारा से स्पष्ट हो जायगा कि बोल्शेविक स्वयं भी अपनी वर्तमान पद्धति को अन्त-कालीन व्यवस्था मानते हैं। उन का कहना है कि दो चार पीढ़ी में जब विकृत संस्कार नष्ट हो कर पुराने सामाजिक संस्कार अपना स्वाभाविक रूप ले लेंगे और प्रत्येक समूह अपने जनतंत्र चलाने में समर्थ हो जायगा, तब यह व्यवस्था खतम हो जायगी। इस प्रकार बोल्शेविज्म अन्तःकाल में गरीब वर्ग का - किसी व्यक्ति का नहीं - डिक्टेटरशिप (सर्वाधिकारीपन) स्थापित करना जरूरी समझता है।

43

57

पुरानी मान्यताएं पाश्चात्य दृष्टि में

पहले तो प्राचीन इतिहास की विशेष जानकारी न होने से पाश्चात्य विद्वान मानव सृष्टि का उद्गम ही १५-२० हजार वर्षों पूर्व से अधिक ही नहीं मानते थे और इस लिये उन में यह धारणा घर कर गई थी कि संसार में सब से पहले उन्नति करने वाले और प्रजातंत्र को जन्म देने वाले वे ही हैं। इस भावना का काफी प्रसार हुआ और इसी दृष्टि से अधिकतर ऐतिहासिक खोज हुई एवं साहित्य निर्माण हुआ। एशियाई देश तो इस युग में पराधीन, अपने ही साहित्य से अनजान और पारस्परिक फूट से जर्जर दशा में थे। उन के पास अपने पुरानेपन का और अपनी श्रेष्ठता का अभिमान भर रह गया था। परन्तु न तो उस का समुचित ऐतिहासिक ज्ञान था न वैज्ञानिक। फिर उन की शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य शक्तियों के हाथों में थी। अतः उन्हों ने भी वही साहित्य पढ़ा और उस की छाप उन के मस्तिष्कों में अब तक है।

पाश्चात्य विद्वान ज्यों २ शोध में आगे बढ़ते गए, त्यों २ उन्हें अपने पुराने विचार बदलने पड़े और आज वे प्राचीन भारतीय साहित्य के निष्कर्षों के बहुत निकट पहुंच गए हैं। क्या सृष्टि क्रम, क्या पृथ्वी की आयु और क्या ऐतिहासिक घटना क्रमों - सब बातों के बारे में उन के दृष्टि कोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है एवं वे भारतीय प्राचीन सभ्यता को आदर की दृष्टि से देखने लगे हैं। परन्तु जैसा कि हम ने अन्य बातों के विवेचन में बताया है, पाश्चात्य देशों में शासन और राजनीति जिन वर्गों के हाथों में हैं उन का दृष्टि कोण निष्पक्ष न होकर प्रत्येक वस्तु का अपने स्वार्थ और राज्यवाद के लिये उपयोग करने का रहा है। इस वर्ग में पाश्चात्य श्रेष्ठता के झूठे अभिमान को कायम रखने और दूसरों के दिलों में भरने की धुन रही है। इसी लिये जहां पाश्चात्य शोधकों और निष्पक्ष विद्वानों के श्रम के कारण उन्हें ऐसी बातों

को स्वीकार करना पड़ता है, वहां भी वे उसमें त्रुटियां दिखाते हुए उसे इस ढंग से वर्णन करते हैं कि पढ़ने वाले पर उस का उलटा प्रभाव पड़ता है। ये त्रुटियां भी प्रायः बनावटी होती हैं।

यही स्थिति उन की राजनीति और पुरानी शासन व्यवस्थाओं के बारे में है। वे मानते हैं कि इन्डो यूरोप (ईरान, भारतादि) के देशों में ही संसार में पहले जातीय-गणतंत्रों का उदय हुआ। परन्तु वे बड़े २ राज्य नहीं बना सके - क्योंकि बड़े राज्य बनाने के लिये दूसरी जातियों को जीतना जरूरी था। सभ्यता का उदय सब से पहले मैक्सिको और मिस्र (अफ्रीका) के पास मैदानों में हुआ। पैदावार बढ़ने और सम्पन्नता के साथ २ एक जाति ने दूसरी को अधीन करना शुरू किया, इस प्रकार जातीय भेदभाव और संघर्षों की वृद्धि हुई, फिर भी बड़ा साम्राज्य कायम रहे ऐसा प्रबन्ध और कहीं नहीं बना। जो बने वे भी छिन्न भिन्न कबीलों के कारण स्थायी नहीं हुए। कारण, उन का उद्देश्य एक न था। जहां एक दल कमजोर पड़ता कि दूसरा अधिकार कर लेता।

यूरोप के सम्बन्ध में

दूसरे नम्बर पर ग्रीक सभ्यता थी। इन के प्रजातंत्र सिटी व्यवस्था के थे और वे भी केवल नगरों में। पहाड़ी इलाका होने के कारण इन को अपनी उन्नति के लिये उद्योगों और व्यापार को अपनाना पड़ा/अधिक मनुष्यों की आवश्यकता पूर्ति को उन्हों ने कुछ पड़ौसी जातियों को मिलाया और

उन से (परसम्बंध (विवाहसंबंध) शुरू किया, किंतु वे तो समान बन जाते थे। अतः मजदूरों की जरूरत पूरी करने के लिये आस पास की जातियों को अधीन किया, इन्हें जनतंत्र में कोई अधिकार भी नहीं दिये और इन्हें बराबर भी अलग ही। किन्तु इन्हों ने सब का एक साम्राज्य बनाने की चेष्टा नहीं की, वे देवताओं का आतंक भी नहीं मानते थे। नगरों में जनतंत्र भी पूरा था। सब चीज सार्वजनिक थी। किसी नगर वासी को चुना हुआ सदस्य होने पर भी सभा में और वाद विवाद में भाग लेने का अधिकार था, किन्तु नगर के बाहर के सब लोग गुलाम थे।

स्पार्टा इन से अलग रहा और अपनी पुरानी सभ्यता पर अड़ा रहा। शेष उन्नतिशील रहे एवं इन में पार्टियां बढ़ती रहीं। पीछे मैसिडोनिया और फिर रोम ने इन्हें जीत लिया।

रोम

यहां पहले रेमस (अष्टपद को 'रेम' की उपाधि होने से) पितर जनतंत्र थे। इन में पुजारी ही राजा होता था और उम्र भर के लिये होता था। सब जातियां एक ही देवता को मानती थीं, फिर यहां पूर्व से आए तार्किन (तार्क्ष्य - ताड़कासुर) लोगों ने अधिकार किया, इन्हों ने आस पास की जातियों को अधीन किया। ये प्लेबियन कहलाते थे और इन्हें नागरिकों के अधिकार न थे। पीछे इन लोगों ने समान अधिकार के लिये आन्दोलन किया और अधिकार प्राप्त किये। इस प्रकार दो प्रतिस्पर्द्धी दलों का पहला पार्लियामेंटरी शासन शुरू हुआ और इन दलों के संघर्ष से तीसरा शासक दल लाभ उठाता रहा। धीरे २ यह एक बड़ा साम्राज्य बन गया।

अब ज़रा ऊपर बताई गई व्यवस्थाओं की त्रुटियों पर ध्यान दीजे। पहली त्रुटि तो यह है कि वे बड़े साम्राज्य नहीं बना सके और ऐसा करने के लिये दूसरी जातियों को जीतना ज़रूरी था। अर्थात राज-नीति का ध्येय उन की दृष्टि से जनतंत्र नहीं, बड़े साम्राज्य हैं और इसी लिये दूसरी जातियों को उन की इच्छा के विरुद्ध पराजित करना भी उचित है।

दूसरी त्रुटि यह है कि साम्राज्य बनाए भी तो शिथिल बन्धनों के साथ जिस से वे स्थिर नहीं रहे। यह निश्चित है कि जब अनेक स्वतंत्र जनतंत्र मिल कर एक साम्राज्य (संघ) बनाते हैं, तब वह शिथिल बन्धनों से ही बनता है। क्यों-कि कोई भी अपनी स्वतंत्रता का बलिदान करके ऐसे संघ में शामिल नहीं होता। फिर ऐसे साम्राज्यों का ध्येय प्रायः किसी प्रबल राज्य की शक्ति से अपनी रक्षा करने का होता था। वह उद्देश्य पूरा होने और खतरा टल जाने पर स्वभावतः ऐसे संघ या तो खतम हो जाते थे या शिथिल पड़ जाते थे। उन का ध्येय बड़े साम्राज्य बनाना था ही नहीं।

तीसरी त्रुटि ग्रीक जनतंत्रों की भी यही बताई जाती है कि उन्हों ने बड़े साम्राज्य बनाने की चेष्टा नहीं की। वे उन को उन्नतिशील मानते हैं। क्यों? इस लिये कि वे उद्योगों और व्यापार द्वारा दूसरों का धन खींच कर समृद्ध बनते थे और अपनी आवश्यकता पूरी करने को पड़ोसी जातियों को गुलाम बनाते थे। ये दोनों बातें आधुनिक पाश्चात्य शासकों को पसन्द हैं। परन्तु इस दृष्टि से और नहीं बढ़े, यही उन में यह त्रुटि थी। उसी त्रुटि को आज कल पूरा किया जा रहा है।

निर्पेक्ष- शोधकों की सम्मति

अब इन की व्यवस्था की तुलना में निर्पेक्ष विद्वानों की शोध के निष्कर्ष अत्यन्त संक्षेप से देखिये।

मि. लॉक का कहना है कि शासन व्यवस्था और नीति का उद्गम मानव समाज में तीन कारणों से हुआ। प्रारम्भ में मानव-मानव में परस्पर सद्भाव था। कोई जाति पांति के भेद न थे। संसार में जो कुछ है, उसे सब ईश्वरीय मानते थे और किसी चीज का स्वामी बनना पाप माना जाता था। हां, अपनी आवश्यकता पूर्ति करने का सबका अधिकार समान था। सब मिल जुल कर ऐसा ही करते थे।

१. किन्तु कहीं २ समाज में कुछ लालची पैदा हो गए और उन्हों ने चीजों का संग्रह करना शुरू कर दिया। अतः लोगों को मिल कर ऐसी बातें रोकने के लिये पंचायती व्यवस्था बनानी पड़ी।

२. इसी प्रकार कहीं किसी अधिक बलिष्ठ या कुछ गुंडों के दल ने दुर्बलों को सताना शुरू किया तब समाज की संगठित व्यवस्था की आवश्यकता हुई।

३. कुछ समूहों में मिल कर विशेष उन्नति करने और सब के जीवन को पारस्परिक सहयोग से अधिक सुखमय बनाने की इच्छा हुई और इस के लिये सामुहिक संगठन बनाया।

व्यवस्थाओं के भेद

इन व्यवस्थाओं के रूप रेखा के बारे में आम तौर पर चार रूप बताए जाते हैं:—

१. व्यक्तित्व और समानताप्रधान। अर्थात समानता तो संगठन का आधार और ध्येय ही मानी जाती थी। किन्तु उसे व्यवहार में लाने का अधिकार किसी प्रमुख व्यक्ति को दे दिया जाता था। इनमें प्रायः यह नियम होता था कि परस्पर रक्त और खान पान आदि का सम्बंध रखने वाले व्यक्ति ही उस में शामिल हो और रह सकते थे। ये भूमि या सीमा प्रधान नहीं होते थे। अर्थात् जहां उन का अपने नियमों और विचारों के अनुसार रहना कठिन

हो जाता, उस स्थान को छोड़ देते। अपनी व्यवस्था स्वीकार करने वाले दूसरे लोगों को भी मिला लेते थे।

२. अधिकतर व्यक्ति प्रधान न होने का, पंचायत प्रधान संगठन थे। परन्तु कोई २ दूसरी जातियों को किसी शर्त पर भी न मिलाते थे,

३. इन सब में एक विशेषता यह थी कि वे स्पर्धा रहित होते थे। अर्थात न तो दूसरे समूहों को देख कर उनके समान बनने की स्पर्धा में पड़ते थे न परस्पर एक दूसरे से, अब वह आदि, धन कमाने, एक दूसरे से अच्छा खाने पहनने आदि की स्पर्धा को पसन्द करते थे। क्योंकि ये बातें समानता की विरोधी थीं।

४. चौथी श्रेणी- पुजारी प्रधान या ब्राह्मण प्रधान। इस में मुख्य देवता का पुजारी ही शासक और प्रमुख होता था।

दो भेद

इन के सम्बंध में केवल एक प्रश्न पर कुछ विद्वानों में मतभेद है। मि जॉनसन (Janko) का कहना है कि समाज के प्रारम्भ में नेतृत्व देने में स्त्रियां अगुआ रहीं, पीछे पुरुषों ने उन को दबा कर ~~स्वयं~~ गृहस्वामी बना दिया। मि. मेन (Main) आदि का कहना है कि 'शुरु से ही पिता लोग नेतृत्व करते रहे।

किंतु विद्वानों की इन व्याख्याओं में उपरोक्त त्रुटियां आदि का कोई प्रसङ्ग नहीं है। यह भी स्पष्ट है कि शासन व्यवस्था को समाज ने अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिये जन्म दिया और उस का उद्देश्य साम्राज्य बनाना, एक-दूसरे को सताना, लूटना और धनी-निर्धन वर्ग बनाना नहीं; प्रत्युत समाज में अभिवृद्धि और नागरिक समानता तथा शान्ति रखना था। यह कहना तो अनावश्यक ही है कि ये निष्कर्ष पाश्चात्य विद्वानों की हिस्ट्री की शोधों और सामाजिक विकास के अध्ययन के ही परिणाम हैं।

५०.

पाश्चात्य दृष्टि-कोण के कारण

हम ने यहां तक हुआ, अत्यन्त संक्षेप से उन राजनैतिक तत्वों की विवेचना की है, जो हमारे देश में पढ़ाए जाते रहे हैं और आज भी पढ़ाए जा रहे हैं। इन में से अराजकवाद, बोल्शेविज्म आदि का ~~उल्लेख~~ वर्णन नहीं होता है। ये हम ने जोड़ दिये हैं। ~~क्योंकि~~ साधारणत: किसी पुस्तकों में सब प्रकार की राजनैतिक विचार धाराओं और उन के दृष्टिकोण का सम्यक् वर्णन मात्र होना चाहिये। किसी विचार धारा के पक्ष विपक्ष में पाठक को बनाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। किन्तु आजकल तो शासन का ध्येय लोगों के मस्तिष्कों को अपने विचारानुसार बनाने का है। अत: उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये न केवल दूसरे पक्ष को सम्यक् प्रकार से रखा नहीं जाता, बल्कि तथ्यों को तोड़ मरोड़ तक दिया जाता है। ~~प्राचीन काल में इतिहास~~ इसीलिये हमें भी इन तत्वों और उन की व्याख्याओं की आलोचना करनी पड़ी है, जो सम्भवत: कहीं २ अधिक कटु भी हो गई हो।

किन्तु पाश्चात्य सत्ताओं के उद्गम और इतिहास पर एक सरसरी दृष्टि डाली जाय तो पता लगता है कि इस सब के लिये मुख्यत: परिस्थितियां ही उत्तरदायी हैं। यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य सभ्यता का उदय ही उस युग में हुआ, जब एशिया की सभ्यता भी सर्वथा विकृत हो चुकी थी। इतना ही नहीं; भारत में पौर जनपद और यूनान में नगर राज्य बन चुके थे, जो आज के - नगरों द्वारा ग्रामों के शोषण या औद्योगिक साम्राज्यवाद के प्रारम्भिक रूप थे। अवश्य ही उन में गणों (जनतंत्रों) की ~~सभ्य~~ संस्कृति का भी सम्मिश्रण था। कारण, भारत से यूनान तक का भाग अर्थात् सारा एशिया, यूनानी सभ्यता से हजारों वर्षों पूर्व से जनतंत्रों का पालना रहता आया था, स्वयं यूनानी विद्वान "अरायन" ने लिखा है कि पुराने युग में सारा एशिया क्षत्रिय गणों का केन्द्र था। दक्ष के समय से एशिया में राज्यवाद ने

फिर उठाया। एशिया में उसे कई जगह सफलता भी हुई। किंतु भारत के गणों ने कृष्ण के समय तक अर्थात् प्रायः सवा-छः हजार वर्षों तक राज्यवाद के पैर नहीं जमने दिये। वे बार २ छोटे २ राज्य स्थापित होते थे और मौका पाते ही गण उन्हें नष्ट कर देते थे। उन्हों ने तीन बार तो ऐसी महाक्रांतियां कीं कि जिन में एक भी राजा या उन का वारिस जिन्दा न रहा। एक बार २०० वर्षों तक कोई राजा बन ही न सका। दूसरी बार १५० वर्ष तक यही स्थिति रही।" प्रसिद्ध इतिहासज्ञ कल्हण ने युद्ध के बाद की भी साक्षी दी है। उन्हों ने बताया है कि "महाभारत के बाद भी एक बार देश भर में 'गण'-शासन फैल गया था।" सिकन्दर के साथियों ने जो भारत के युद्धों के अपने अनुभव लिखे हैं, उनमें भी यहां के गणों की दुर्जेयता की भूरि २ प्रशंसा की है।

ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि यहां साम्राज्यवाद थोड़े २ ही पैर जमा सका और ~~और~~ वह भी जनतंत्रात्मक रूप में ही। पाश्चात्य नीतिज्ञ कहते तो हैं कि ग्रीक्स ने बड़े २ साम्राज्य बनाने की कोशिश नहीं की। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि यद्यपि भारत में, महाभारत में ही गणतंत्र की कमर टूट गई थी, फिर भी उन की तेजस्विता और संस्कृति सर्वथा नष्ट नहीं हुई थी। ऐसी दशा में 'ग्रीक्स' का ऐसा साहस करना अपने सर्वनाश को ही निमंत्रण देना होता।

परन्तु 'रोम' साम्राज्य की स्थापना के समय स्थिति सर्वथा दूसरी थी। उस समय एक ओर भारत के गणों का बल प्रायः नष्ट हो गया था। वे चारों ओर से विरोधियों से घिर गए थे। बार २ की पराजयों से उनमें से अनेकों की प्रवृत्ति 'एक नेता' के सिद्धान्त की ओर बढ़ चली थी। दूसरी ओर रोम और पाश्चात्य देशों में पहले ही से वितान सभ्यता का (जिसका सिलसिलेवार वर्णन हम आगे देंगे) दौरदौरा था, जिसमें साम्राज्यवाद के तत्त्व पहले से ही मौजूद थे। भारत और एशिया से पराजित हुए राज्यवादी शक भी उधर ही पहुंच गए थे और ऐंग्लो सैक्सन

जातियां तो सिवा सभ्यता की पुत्री द्रविड़ (द्रैविडियन) सभ्य-
-ता की सन्तान हुई हैं। उन के सम्बन्ध में स्वयं पाश्चात्य इतिहा-
-सज्ञों ने लिखा है कि :—

इस प्रकार इस सभ्यता का जन्म ही राज्यवादी वायुमंडल में हुआ। इस में शक नहीं कि पाश्चात्य सिता गणों में भी काफी हद तक जनतंत्र था। साथ ही वे एक २ समान संस्कृति या जाति के लोगों के बने हुए थे। इस लिये उन में दलबन्दी न होती थी, उदाहरण के लिये 'रोम'

परन्तु नए विजेताओं ने उन की शक्ति कम होने को भिन्न २ जातियों को उन में मिलाया। वहीं से दलबन्दी और प्रतिस्पर्द्धा वहां की राजनीति की विशेषता बन गई, जिस का दुरुपयोग नए शासक करते गए। परिणामतः धीरे २ जनतंत्र का लोप होता गया और केन्द्रीय शक्ति स्वेच्छाचारी होती गई। आगे चल कर इन सम्राटों और पुजारियों का गुट बन गया।

'हज़रत ईसा' के समय तक 'देव शासन' का अर्थ दूसरा लिया जाता था। पुजारी शासक देवता के नाम पर शासन करते थे, अपनी जनता में स्वतंत्रता की भावना जागृत रखने के लिये वे उन्हें यह शिक्षा देते थे कि "मनुष्य का मनुष्य शासक नहीं हो सकता। मनुष्य देवता का ही शासन मान सकता है क्योंकि वह देव पुत्र है।" यह भावना कि और देवता के नाम पर मिली हुई आज्ञा को अन्याय हो या मानने की जनता में भावना आती थी और साथ ही दूसरी ओर उन्हें अपनी स्वतंत्रता के लिये मरने जीने को तैयार रखती थी। इस प्रकार यह [illegible] शासन को स्थायी बनाने की कुंजी थी।

'मूसा के विधान' (Laws of Moses) में मा० जोइस्ट के जीवन की एक घटना का उल्लेख आता है। उस समय इस्राइल सम्राट रोम के आधीन था। रोम ने प्रत्येक घर से कुछ कुछ अनाज की मांग की। सम्राट की 'पितृसभा' ने उसे उगाहने के लिये आदमी भेजे। उन में से एक 'जोइस्ट' के पास भी पहुंचा। जोइस्ट ने पूछा कि — "अनाज किस की आज्ञा से मांगा जा रहा है?" चपड़ासी ने कहा — "रोम सम्राट की आज्ञा से!" जोइस्ट ने उत्तर दिया — "रोम सम्राट मनुष्य है, मनुष्य मनुष्य का शासक नहीं हो सकता। हम देव पुत्र हैं। रोम सम्राट को हम से कुछ मांगने या कहने का अधिकार नहीं! जाओ, मैं शाम को पितृसभा (Council of Elders) से इस का उत्तर दे दूंगा।"

इस से समझा जा सकता है कि 'देव शासन' का उस समय क्या अर्थ और उपयोग होता था। फिर जब ईसाइयत फैली, तब वे ही पुजारी ईसाई पुजारी बन गए।

ऐसी स्थिति में पुजारियों को मिलाए बिना राज्य वादियों का मनोरथ पूरा न हो सकता था, उधर राज्यवादियों का बल जिस प्रकार बढ़ता जा रहा था, उससे पुजारियों के पैर डांवाडोल हो रहे थे। वे उन का मुकाबिला करने में असमर्थ थे और पराधीन होते जा रहे थे, क्योंकि वे लोग 'पिंडारियों' की तरह लूट मार करते थे, उधर लोग नए ईसाई धर्म को स्वीकार नहीं कर रहे थे। इस प्रकार दोनों के हित की दृष्टि से दोनों एक हो गए।

फिर क्या था? पोप की अध्यक्षता में पुजारियों और राज्यवादी - दोनों का संगठन हो गया। जो समूह आधीनता न मानता या 'पोप' के पादरियों को प्रचार न करने देता, उसी पर इन की सम्मिलित शक्ति का आक्रमण हो जाता। फिर तो राजा बनने का इच्छुक एक हाथ में तलवार और एक हाथ में शमी वृक्ष की डाली ले कर जाता। सब मिलते हुए समूह के प्रमुख गांव के बाहर आते। यदि वे शमी की डाली ले लेते तो मान लिया जाता कि वे उसे राजा मानने को तय्यार हैं, अन्यथा युद्ध होता। उधर भारत के उन्हीं पुजारियों के पूर्वज वैदिकों की तरह पादरी 'राजा के ईश्वरांश' होने का प्रचार करने लगे। इस प्रकार योरोप में जो कुछ लोकाधिकार शेष थे, वे नष्ट कर दिये गए।

फिर आगे चल कर राजाओं को 'पोप' और पादरियों का नियंत्रण खटकने लगा और इन दोनों में लम्बा संघर्ष चला। अन्त में ब्राह्मण स्वभाववश वे 'चढ़ बनी' में सम्मिलित हो गए। इस के बाद फिर मानवता की आत्मा ने करवट बदली और जनतंत्र का बिगुल बजा। उसी ज़माने में पहले जेम्स ने एक पुस्तक

The law of free Monarchies (एकतंत्री शासकों का विधान) लिखी, जिस में उस ने कहा है कि :–

"The King has derived his authority directly from God. Therefore he is above the people as above the law. He is subject to God & his conscience alone. He owes no legal obligation to the people. The only obligation he has, is a moral one to God to govern the people well."

अर्थात 'राजा ने अपना अधिकार सीधा ईश्वर से प्राप्त किया है। इस लिये वह जनता से ऊपर है, और वैसे ही विधान से भी ऊपर है। वह केवल अपने अन्त:करण और ईश्वर के आधीन है। उस के ऊपर जनता के लिये कोई कानूनी उत्तरदायित्व नहीं है। जो कुछ उत्तरदायित्व उस का है वह ईश्वर के निकट केवल अच्छी तरह शासन करने का है।"

और 'यथा राजा तथा प्रजा' की कथा प्रसिद्ध हुई है, अत: शासकों की इस मनोवृत्ति और धर्म के दुरुपयोग ने जनता की भी नैतिकता की अवहेलना कर दी। उस में – बड़े वर्गों में छोटों को और नैतिकता में अपने से छोटों को चूसने की प्रवृत्ति पैदा हो गई। और छोटे राजाओं को खतम करने पर भी स्थिति सुधरने के बजाय और इसी लिये बिगड़ती चली गई। जनतंत्र और प्रजातंत्र के नाम पर पूंजीवादी शासन कायम हो गए। सच पूछो तो "मत्स्य न्याय" की इन आधुनिक सभ्य शासकों पर ही अधिक घटती है।

इस घटना क्रम से स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य राजनैतिक तत्वों का विकास ही अर्थगामी स्थितियों में न हो, का

अधोगामी की स्थितियों में हुआ है और इसी लिये वह
अभूतपूर्व उन्नति करने पर भी समाज को अधोगामी की[?]
ओर हुए[?] अधिकाधिक लिये जा रहे हैं।

निष्कर्ष

हम ने देखा है कि पाश्चात्य राजनीति का विकास हुआ राज्यवादी वायुमंडल में जन्मे हुए और यहां के सत्ताधारि/नीतिज्ञ राजनीति का मुख्य लक्ष्य शुरू से ही राज्य विस्तार और वर्गों की उन्नति मानते हैं।

हम ने यह भी देखा कि विज्ञान और शोध की प्रगति के साथ पाश्चात्य विद्वानों के दृष्टिकोण में विशालता आई और वे बहुत कुछ प्राचीन 'सत्यों' को देखने समझने में समर्थ हुए। उन्हों ने संसार को ठीक मार्ग दिखाने की भी चेष्टा की। किन्तु स्वार्थ और सत्ता से अन्धे बने हुए वर्गों ने उन की आवाज को उभरने नहीं दिया, जिस प्रकार उन्हों ने ईसा को सूली पर चढ़ाया, सुकरात को विष पिला कर मारा और अन्त में महात्मा गांधी को गोली का शिकार बनाया और कि उन्हीं के नाम पर अपना अपवित्र धन्धा चलाते हैं, उसी प्रकार वे अपने विद्वानों के और उन के विचारों के प्रति आचरण करते हैं।

हम ने देखा है कि उन का उद्देश्य समाज में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन करना नहीं; प्रत्युत जैसा भी समाज बना हुआ है, उसे येन केन प्रकारेण अपने शासन में रखना और विभिन्न वर्गों को लड़ाते हुए शक्ति सन्तुलन रखना मात्र है। वे इतिहास, धर्म, नैतिकता, सुधार आदि प्रत्येक वस्तु का उसी दृष्टि से उपयोग करते हैं। उन का उद्देश्य मानव संस्कृति का विकास, जनता को सच्चे इतिहास का ज्ञान और सच्चे अर्थशास्त्र या जनतंत्र से परिचित कराना नहीं; प्रत्युत इन की आड़ में अपने स्वार्थों के अनुकूल लोगों के मस्तिष्कों और आचरण को बनाना है। उदाहरण के लिये हमारे देश की पुरानी सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा और ग्राम्य अर्थ नीति को ही ले लीजे। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा वास्तव में सामाजिक नीति की प्रारम्भिक पाठ-

डालता है। इस प्रथा की बदौलत स्वभावतः व्यक्ति के व्यक्तित्व का लोप हो जाता है। कुटुम्ब का प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ सोचता है, सो कुटुम्ब के लिये सोचता है। जो कुछ करता है सो कुटुम्ब के लिये करता है। धीरे २ यह क्षेत्र विस्तृत हो कर रिश्तेदारों और मित्रों तक पहुंचता है और सब के प्रति वैसी ही निःस्वार्थता और आत्मीयता अनुभव करता है। उन की उन्नति और उन के विकास की समान चिन्ता करता है। इस प्रकार वह जन्म से ही कुछ व्यक्तिगत स्वार्थ व्यक्तिगत जीवन को छोड़ कर इस छोटे समाज की आत्मा बनने का पाठ पढ़ता है। जो कुछ हो तो सब के लिये समान हो, न हो तो बिना विशेष कारण किसी के लिये न हो।

इतना ही नहीं, वह अपने स्वभाव को भी सब के अनुकूल बनाना, भिन्न २ प्रकृति के लोगों से सहयोग करना, भिन्न २ स्वभाव वाले कुटुम्बियों के साथ निभाना और उनके मिल के भी सीखता है। इस प्रकार जहां उस में व्यक्तिगत आकांक्षाओं पर संयम रखने की और दूसरों की भावनाओं का आदर करने की आदत पड़ती थी वहां उस में समाज की व्यवस्था करने की शक्ति भी बढ़ती थी।

उसी का विकसित रूप ग्राम-समाज होता था। उस में भी कोई व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से नहीं, बल्कि पारस्परिक आवश्यकता पूर्ति की दृष्टि से सब काम होते थे। बढ़ई (खाती), लुहार, धोबी, कुम्हार, नाई, कोली, चमार आदि सब जिस की जितनी आवश्यकता होती, उतना उस का काम कर देते थे और किसान प्रत्येक के खर्च लायक उसे अनाज दे देते थे। सामाजिक कार्यों में सब समान रूप से सहयोग देते थे और ग्राम्य व्यवस्था में सब बराबर के भागीदार होते थे। यही स्थिति प्राचीन ग्राम-समाज की थी।

परन्तु पाश्चात्य शासकों ने उन्नतिशीलता के या उन्नति के नाम पर व्यक्तिवाद फैलाया और उपरोक्त संगठनों को छिन्न-भिन्न कर दिया। स्वभावत: उस का विष कुटुम्ब प्रथा तक में फैल गया और आज यह स्थिति है कि कुटुम्ब तक में समानता और सद्भाव के दर्शन नहीं होते। यदि किसी किसान ने पेट काट कर किसी तरह अपने पुत्रों को वकील या जज बना दिया तो शेष किसान ही बना रहता है और पुत्र अपनी आय और अपने पद के अनुसार ठाठ से रहते हैं। वे कभी यह सोचते भी नहीं कि इस ठाट में उन के कुटुम्बियों का भी कुछ भाग है।

पाश्चात्य कहते हैं कि यही तो जीवन है। noncompetitive स्पर्द्धा शून्य जीवन किस काम का? ऐसे लोग उन्नति नहीं कर सकते। मनुष्य में अच्छे से अच्छे भोग भोगने की आकांक्षा होनी चाहिये तब ही वह प्रयत्न और उन्नति करेगा और नए २ उपाय निकालेगा। उन ही के फल से आज 'काला बाज़ार', रिश्वत, चोरी, जालसाज़ी, नकली चीज़ों को असली कह कर बेचना आदि कलाएं निकली हैं और प्रत्येक मनुष्य दूसरे की जेब काटने की धुन में लगा है।

आश्चर्य यह है कि जब इन ही पाश्चात्य देशों में से किसी पर किसी दूसरे देश का आर्थिक आधिपत्य हो जाता है, तब ये लोग देशहित के नाम पर देश के लोगों से संयत जीवन बिताने और अपनी विलासेच्छाओं पर अंकुश लगाने का प्रचार करते हैं। ऐसे कानून बनाते हैं और बाहर से आने वाले माल पर इतना टैक्स लगाते हैं कि वह वहां बिक ही न सके।

Job P. Press, Ajmer.—2,570 Bks.—9-7-37.

57

T. 32 B.
R. I.-July 1937.

B. B. & C. I. Railway Company.

(*Incorporated in England by Special Act of Parliament.*)

(Including the Holkar State and the Scindia-Neemuch State Railways.)

Summary of Silver, Packages and Covers etc. for.......................Station transferred from Guard.........................to Guard.........................at............Station on.........................

Stations to or Section.	Number of packages.	Number of Silvers.	Number of base coins sealed covers.	Number of booked covers.	Empty Canvas bags.	Guidances.			Misc.
						P.	C.	V.	
									A. Boxes....................... E. T. Boxes....................... F. Extinguishers .... Tail Lamp.......................
									D. Lists for Covers. / Circulars. / E. L. C. Bags / Others.
Total ...									

To be prepared by each guard during his run in triplicate.
(1) for record, (2) for submission to D. T. S. (concerned) with guard's report and (3) for guard taking over.

पल नहीं इस की कि ज़माना खिलाफ़
किस वही चलूंगा जो सीधा रास्ता है।

ए दिल कहीं न जो दे तू अपनी ज़बां हिला।
यह दर्द अपने दिल का छिपाये ही तू चलता।

हम वहां हैं, जहां से हमको
कुछ हमारी खबर नहीं आती।

जाने हमारी खामोशी आवाज़ हुई है।
कुछ है कि मेरी बात सबकी ज़ुबां हुई है।

है शहर दुकान ताले तक राज जा पहुंचा
अब हम भी जाने वाले हैं, सामान तैयार।

....
Guard making over.

....
Guard taking over.

For Distt. Traffic Supdt.

'नीति' शब्द संस्कृत की 'नी' धातु से बना है, जिस का अर्थ है 'ले जाना' अर्थात 'लक्ष्य बताने' वाला या 'मार्गदर्शन' करने वाला ज्ञान। इसी लिये हमारे साहित्य में समाजनीति, धर्म नीति, अर्थनीति आदि प्रत्येक विषय के साथ 'नीति' शब्द का प्रयोग किया गया है; 'प्लैटो' के शब्दों में 'राजनीति' मानव समाज की समाज नीति का एक उपाङ्ग मात्र है। इस से स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति का लक्ष्य किसी भी प्रकार, जैसा भी सम्भव हो, उस पर शासन करना नहीं; प्रत्युत उसे, राजनीति के क्षेत्र में, किसी विशेष लक्ष्य की ओर ले जाना है।

भारतीय राजनैतिक तत्वों के उद्गम और विकास को समझने के लिये हम यहां संक्षेप से कुछ ऐतिहासिक परम्परा का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं। भारतीय प्राचीन (वैदिक) साहित्य के अनुसार इस कल्प में तीन महाद्वीपों में प्रायः एक साथ मानव सृष्टि हुई और उन में चार भिन्न २ सभ्यताओं का उदय हुआ। इन तीन महाद्वीपों में एक प्रशान्त महासागर में फैला था, दूसरा दक्षिण महासागर में और तीसरा बलूचिस्तान से लेकर ईरान, चीन और काकेशस में, अफ्रीका के सहारा तक, जो उस समय खुला समुद्र था, फैला था। इन तीनों से घिरा हुआ वर्तमान भारत की जगह भू-समुद्र था। आधुनिक शोध से भी इन तीन महाद्वीपों का अस्तित्व सिद्ध हो चुका है और पाश्चात्य शोधकों ने यह भी अनुमान किया है कि शायद मानव सृष्टि पहले इन ही महाद्वीपों में हुई।

इन में से प्रशान्त वाले महाद्वीप में 'देव' सभ्यता का विकास हुआ, जिस ने 'ऋग्वेद' को जन्म दिया। दक्षिणी महाद्वीप जिस का एक भाग वर्तमान बंगाल, उत्तरी बिहार और नैपाल

भी थे और जिसे पाश्चात्य शोधकों ने सिमूरिया या लेमूरिया नाम दिया है-में 'सिन्धु' सभ्यता का उदय हुआ।

देव सभ्यता

ऐसा प्रतीत होता है कि देव सभ्यता ने विज्ञान के क्षेत्र में आज से भी अधिक उन्नति की थी, कारण अब तक की शोध बाबा उस के निश्चित निष्कर्षों की ओर हुई प्रगति को हुई है, अर्थात परमाणु सम्बंधी शोध के सिलसिले में प्रसिद्ध पाश्चात्य वैज्ञानिक ने कहा था कि 'अन्त में हम वेदों को ही दोहराते प्रतीत होते हैं।" इस ने मानव शरीर में मौजूद दिव्य शक्तियों और उन के विकसित होने का मार्ग खोज निकाला था और उस के ध्येय मनुष्य का विकास दिव्य मानव तक होना था। अतः अवनति रोकने में सब से अधिक सावधानी मनुष्य को आदि से अन्त तक मनुष्य बनाए रखने की की।

उन्हों ने देखा कि शिशु मानव में स्वाभावतः सारे मानव गुण और विकास मौजूद होते हुए भी, प्रकृति से ही वह उन का उचित उपयोग करने का आदी होता है। वह संग्रह प्रिय नहीं होता। भूख, प्यास आदि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होते ही संतुष्ट हो जाता है। यदि सब बच्चों को एक समान खान, पान और अन्य सामग्री दी जाए, तो उस में दूसरे के प्रति ईर्ष्या नहीं पैदा होती, क्रोध होता है तो प्रतिकार में रूठने की प्रवृत्ति ही प्रधान होती है, ही वह उसे भूलता भी बहुत जल्दी है। उसे किसी से राग-द्वेष नहीं होता। वह सर्प तक के साथ खेलने को तय्यार होता है और प्रायः ऐसे प्राणी भी उसे हानि नहीं पहुंचाते।

यदि इन बातों को रोक कर वायुमंडल में ही वह बड़ा हो तो बड़ा होने पर भी उस में वे गुण वर्तमान रहते हैं। वह कभी असत्य

इकरारनामा

हम कि :-

(१) रावबहादुर श्री केसरीसिंह जी बिजोलिया,

(२) बाबा जी नरसिंहदास जी, अजमेर

(३) विजयसिंह पथिक संस्थापक रा. से. सं. कोटा

(४) अब्दुर्रहमान बिजोलिया,

१. यह कि हम चारों व्यक्ति भागीदार के तौर पर नीचे लिखी शर्तों पर रा. से. सं. के ग्रामोद्योग आश्रम के अधीन काम करना स्वीकार करते हैं :-

२. यह कि भागीदार नं. १ दस हज़ार रुपये तक की पूंजी लगाएगा और अपना एक आदमी अपने हितों और हिसाब आदि की देख भाल के लिये केन्द्र पर रखेगा।

३. भागीदार नं. २ की तलैयां ऊन को बाहर मुनाफ़े के साथ बेचने व सप्लाई करने की व्यवस्था करेंगे।

४. भागीदार नं. ३ हि[illegible] हिसाब किताब व कार्यालय के निरीक्षण की व्यवस्था करेंगे।

५. भागीदार नं. ४ नं. [illegible] साथ मिलजुल कर [illegible] माल खरीदने आदि का कार्य करेंगे।

६. हिसाब प्रति छठे मास होगा।

७. खर्च निकालने के बाद खालिस मुनाफ़ा चारों भागीदारों में बराबर [illegible] जायगा

Job P. Press, Ajmer.—2,570 Bks.—9-7-37.

82

T. 32 B.
R. I.-July 1

B. B. & C. I. Railway Company.

(Incorporated in England by Special Act of Parliament.)

(Including the Holkar State and the Scindia-Neemuch State Railways.)

Summary of Silver, Packages and Covers etc. for.......................Station transferred from Guard..........................t
Guard.........................at............Station on.........................

Stations to or Section.	Number of packages.	Number of Silvers.	Number of base coins sealed covers.	Number of booked covers.	Empty Canvas bags.	Guidances.			Misc.
						P.	C.	V.	
									A. Boxes..................
									E. T. Boxes..............
									F. Extinguishers ....
									Tail Lamp..................
									D. Lists for: Covers. / Circulars. / E. L. C. Bags / Others.
Total ...									

c. कोटा के श्री. ~~[illegible]~~ ~~[illegible]~~ रा. सहदनेवाल (स्तेशन[illegible] वाले) हिसाब की ब्रीक हुँ जो। ई. क्रम कोटा के किसी बैंक में जमा रहेगी।

To be prepared by each guard during his run in triplicate.
(1) for record, (2) for submission to D. T. S. (concerned) with guard's report and (3) for guard taking over.

....
Guard making over.

....
[G]uard taking over.

For Distt. Traffic Sup[...]

पर वैधानिक बल रहे हैं, कोई पड़ोसी की स्थिति की परवाह नहीं होता। कुत्ता जैसा पशु भी साथी कुत्ते के रुग्ण या घायल होने पर उस की सेवा करता, स्वयं न खा कर अपनी खुराक उसे देता देखा जाता है। परन्तु मनुष्य, मनुष्य के नाते दूसरे मनुष्यों की तो क्या, अपने गांव के कुटुम्बियों तक की दुर्दशा पर ध्यान देना अपना कर्तव्य नहीं समझता। यह उत्थान है या मानव का घोर पतन?

~~मुनियों~~ यही स्थिति और मानव विकारों के सम्बन्ध में समझ लीजिये। काम हो या क्रोध, मोह हो या मद - सब ही विकार जब मनुष्य पर काबू कर लेते हैं, तब उस का विवेक नष्ट हो जाता है। इसी से बचाव के लिये उन्होंने ये नियम बनाए।

अपरिग्रह - दूसरा विकार, जो समाज में विशृंखलता पैदा करता वह है धन संग्रह की प्रवृत्ति। यह अमर्यादित लोभ और फलतः [illegible] औरों को ठगने की मनोवृत्ति को जन्म देता है। अतः उन्होंने [illegible] समाज में यह नियम बना दिया कि औरों से अधिक या अनाव[illegible] हो। [illegible] करने का काम बुरा है।

नहीं बोलता, किसी की वस्तु नहीं चुराता, औरों से हिलमिल कर रहने खेलने में ही उसे प्रसन्नता होती है और एकाकी मन अखरता है। नई बातें सीखने, प्रत्येक बात को समझने और और अनुकरण करने की उस में प्रबल भावना होती है।

वह विद्रोह का शिकार केवल दो स्थितियों में होता है, या तो आवश्यकताओं पूरी न होने पर या दूसरों में अपने से कुछ विशेषता देखने पर अथवा आस पास का वायुमंडल, कुटुम्ब और समाज का आचरण इन बातों के विपरीत होने पर। और यदि मनुष्य को मनुष्य रखना है, उसे मानवता से नहीं गिरने देना है, तो यह आवश्यक था कि समाज रचना ही ऐसे आधारों पर की जाय, इसीलिये उन्हें ने! ~~मानव समाज और व्यक्ति के जीवन निर्माण के नीचे लिखे सिद्धान्त निश्चित किये:—~~

इस के अतिरिक्त उन्हों ने यह भी अनुभव किया कि मनुष्य स्वभाव से ही स्वतंत्र और सामाजिक है, उसे स्वतंत्र विचार और कर्म शक्ति प्राप्त है। अत: उपरोक्त गुण उस में तब ही स्थिर रह सकते हैं, जब उस की स्वाभाविक स्वतंत्रता पर कोई बल का अंकुश न हो। क्योंकि बल प्रयोग प्रतिहिंसा को जन्म देता है और खुला मार्ग न पाने पर मानवी बुद्धि गुप्त मार्ग और असत्य का आश्रय लेने को बाध्य होती है।

उन्हों ने यह भी समझा कि मानवता का जितना पतन होगा, विकारों को जितना उत्साहन मिलेगा, उतनी ही समाज में अधिक फूट, गड़बड़ी, हिंसा, कपट, ठगी आदि बढ़ेगी और व्यवस्था एवं शान्ति स्वप्न हो जायगी। इन बातों की रोक के लिये व्यवस्था का व्यय अन्धाधुन्ध बढ़ जायगा। अत: वे समानता के इतने हुए समर्थक बने कि खान पान आदि सब बातों में उसे एक नियम मान लिया गया।* इसी प्रकार शासन और समाज में सब को

---

* समानी प्रपा सहवो अन्नभाग:।

समान अधिकार माने गए। स्त्री-पुरुष के भी अधिकारों में कोई भेद नहीं किया। विवाह के लिये केवल सभा के सम्मुख दोनों का विवाह-करना स्वीकार कर लेना काफी समझा जाता था। इस के अतिरिक्त उन्हों ने चरित्र गठन के नीचे लिखे नियम बना दिये :–

अहिंसा - किसी के प्रति मन में भी कुविचार न लाना। किसी का अधिकार न छीनना। किसी से ऐसा व्यवहार न करना जिस से उसे दुःख हो। किसी को न मारना

सत्य - सत्य ही बोलना, सत्य ही आचरण करना, सत्य उपायों से ही जीवन यापन करना। इसी लिये यहां कृषि को उत्तम और व्यापार को नीचा माना गया। क्योंकि व्यापार में झूठ के बिना काम नहीं चलता। कृषि में झूठ की आवश्यकता ही क्या? फिर मुनाफे आदि का भी उस में प्रश्न नहीं।

अस्तेय - किसी दूसरे की वस्तु उस के अनजान में, या उसकी अनुमति बिना या छिपा या स्वाधिकार धारणा कर न लेना।

शौच - अपने शरीर को, अपने वस्त्रों को, अपने घर को और उसके चारों ओर के भाग को स्वच्छ और शुद्ध रखना।

इन्द्रिय निग्रह - मन की इच्छाओं और इन्द्रियों पर और उसके विकारों - काम, क्रोध, मद, लोभ विवेक का अंकुश रखना। प्रत्येक इच्छा के औचित्य अनौचित्य, आवश्यकता, अनावश्यकता, बुराई-भलाई, समाज पर उस का प्रभाव, समाज के नियमों से उस का सामंजस्य आदि सब बातों पर विचार कर निश्चय पर पहुंचना।

इन चीज़ों पर निग्रह न होने का परिणाम आज हम देख रहे हैं। लालच की कोई मर्यादा न होने से आज व्यक्ति-व्यक्ति को, समूह-समूह को और राष्ट्र रा... लूट रहे हैं और उस लूट को युद्ध-व्यापार ...